श्री महावीराय नमः
श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः
नाणस्स सव्वस्स पगासणाए
(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जय गुरु हीरा

जय गुरु मान

जैन धर्म मध्यमा

चतुर्थ कक्षा

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

सामायिक स्वाध्याय भवन

प्लॉट नं. 2, नेहरू पार्क, जोधपुर-342003 (राज.)

फोन : 0291-2630490, 2636763, 2624891

email: shikshanboardjodhpur@gmail.com

website : www.jainratnaboard.com

सूत्र विभाग-

आवश्यक (प्रतिक्रमण) सूत्र- मूल, पूर्ण विधि सहित

साधु साध्वी हों तो उनके सन्मुख, अन्यथा पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके तीन बार विधि पूर्वक वन्दना करें, फिर देवसिय प्रतिक्रमण चउवीसत्थव की आज्ञा है, ऐसा बोलें।

नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं व तस्स उत्तरी में झाणेणं तक बोलकर एक 'लोगस्स' का 'काउस्सग्ग' ऐसा बोलकर अप्पाणं वोसिरामि बोलने के साथ 'काउस्सग्ग' करें। लोगस्स सम्पूर्ण होने पर 'नमो अरिहंताणं' ऐसा बोलकर 'काउस्सग्ग' पालें, बाद में कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, प्रकट में एक लोगस्स व विधिपूर्वक दो बार नमोत्थुणं देवें।

पूर्ववत् तीन बार वन्दना, देवसिय प्रतिक्रमण की आज्ञा है।

1. इच्छामि णं भंते का पाठ

इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय नाण-दंसण चरित्ताचरित्त तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

{सारांश- यह प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने का पाठ है। इस पाठ में श्रावक व्रतों में लगे ज्ञान, दर्शन, चारित्राचारित्र एवं तप सम्बन्धी अतिचारों के चिन्तन हेतु काउस्सग्ग करने का विधान है।}

प्रतिक्रमण में दिवस रात्रि, पक्खी, चौमासी व संवत्सरी के दिन निम्नलिखित शब्दों में निम्नानुसार परिवर्तन करके बोलना चाहिये :-

1.	देवसियं	राइयं	पक्खियं	चाउम्मासियं	संवच्छरियं
2.	देवसिय	राइय	पक्खिय	चाउम्मासिय	संवच्छरिय
3.	देवसिओ	राइओ	पक्खिओ	चाउम्मासिओ	संवच्छरिओ
4.	दिवसो वइक्कंतो	राइ वइक्कंता	पक्खो वइक्कंतो	चाउम्मासो वइक्कंतो	संवच्छरो वइक्कंतो
5.	देवसियं वइक्कमं	राइयं वइक्कमं	पक्खियं वइक्कमं	चाउम्मासियं वइक्कमं	संवच्छरियं वइक्कमं
6.	देवसियाए	राइयाए	पक्खियाए	चाउम्मासियाए	संवच्छरियाए
7.	देवसियस्स	राइयस्स	पक्खियस्स	चाउम्मासियस्स	संवच्छरियस्स

एक नवकार मंत्र बोलें। पूर्ववत् तीन बार वन्दना-प्रथम आवश्यक की आज्ञा लें। करेमि भंते का पाठ बोलें।

2. इच्छामि ठामि का पाठ

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइयारो, कओ, काइओ वाइओ माणसिओ, उस्सुत्तो, उम्मग्गो, अकप्पो, अकरणिज्जो, दुज्झाओ, दुव्विचिंतिओ, अणायारो अणिच्छियव्वो, असावगपाउग्गो, नाणे तह दंसणे चरित्ताचरित्ते, सुए सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं, चउण्हं कसायाणं, पंचण्हमणुव्वयाणं, तिण्हं गुणव्वयाणं, चउण्हं सिक्खावयाणं, बारसविहस्स सावग धम्मस्स, जं खंडियं, जं विराहियं, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- यह संक्षिप्त प्रतिक्रमण का पाठ है। इसमें मन-वचन- काया से लगे दोषों जैसे- सूत्र विरुद्ध, अकल्पनीय, अकरणीय, अशुभ चिन्तन आदि की आलोचना की गई है। बारह व्रत रूप श्रावक-चारित्र में आंशिक खण्डना और विराधना का मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है।}

विधि- फिर तस्स उत्तरी का पाठ झाणेणं तक उच्चारण कर '99 अतिचारों का काउस्सग्ग' ऐसा बोलकर 'अप्पाणं वोसिरामि' बोलने के साथ विधि सहित काउस्सग्ग करें। (99 अतिचार- आगमे तिविहे, अरिहंतो महदेवो, 12 स्थूल, 15 कर्मादान, संलेखना सहित 99 अतिचार का समुच्चय पाठ, 18 पापस्थान, इच्छामि ठामि का पाठ) काउस्सग्ग में इन सब पाठों में मिच्छा मि दुक्कडं के स्थान पर 'आलोउं' कहना।

3. आगमे तिविहे का पाठ

आगमे तिविहे पण्णत्ते तं जहा- सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे, इस तरह तीन प्रकार के आगम रूप ज्ञान के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- जं-वाइद्धं, वच्चामेलियं हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुट्ठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ, सज्झाओ, असज्झाइए सज्झायं, सज्झाइए न सज्झायं, भणता, गुणता, विचारता, ज्ञान और ज्ञानवंत पुरुषों की अविनय आशातना की हो तो (इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो) तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- यह ज्ञान के अतिचारों का पाठ है। आगम या शास्त्र के पठन-पाठन में लगे अतिचारों जैसे- पाठ के क्रम का आगे-पीछे होना, हीन अक्षर, अधिक अक्षर, विनय रहित, योग रहित, अकाल में पठन आदि 14 अतिचारों की आलोचना कर दुष्कृत मिथ्या हो, ऐसी प्रार्थना की गई है।

आप्त पुरुषों द्वारा कथित आगम/शास्त्र के स्वाध्याय रूप तप से आत्मा शुद्ध बनती है।}

4. दर्शन सम्यक्त्व का पाठ

अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिण पण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ।।1।।
परमत्थ संथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वा वि ।
वावण्ण कुदंसण वज्जणा, य सम्मत्त सद्दहणा ।।2।।

इअ सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- संका, कंखा, वितिगिच्छा परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो।

इस प्रकार श्री समकित रत्न पदार्थ के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. श्री जिन वचन में शंका की हो, 2. परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3. धर्म के फल में संदेह किया हो, 4. पर पाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5. पर पाखण्डी का परिचय किया हो और मेरे सम्यक्त्व रूप रत्न पर मिथ्यात्व रूपी रज मेल लगा हो। (इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो) तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- यह सम्यक्त्व (व्यवहार) ग्रहण करने का पाठ है। सम्यक्त्व का स्वरूप बताते हुए यहाँ कहा गया कि राग-द्वेष विजेता अरिहंत मेरे देव, पंच महाव्रतधारी सुसाधु मेरे गुरु और जिनेश्वर कथित तत्त्व धर्म हैं। जीवादि तत्त्वों की जानकारी, इनके जानकारों की सेवा, समकित से गिरे तथा मिथ्यादृष्टियों की संगति छोड़ने से सम्यक्त्व सुरक्षित रहता है। इसमें शंकादि समकित के 5 अतिचारों की आलोचना कर मिच्छामि दुक्कड़ं दिया गया है। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म रूप सम्यक्त्व, मोक्ष का मार्ग है।}

5 से 17 - पन्द्रह कर्मादान सहित 12 व्रतों के अतिचार

(1) पहला स्थूल प्राणातिपात-विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो, तो आलोउं- 1. रोषवश गाढ़ा बंधन बांधा हो, 2. गाढ़ा घाव घाला हो, 3. अवयव[1] का छेद किया हो, 4. अधिक भार भरा हो, 5. भत्त-पाणी का विच्छेद किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस संबंधी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(2) दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. सहसाकार से किसी के प्रति कूड़ा आल (झूठा दोष) दिया हो, 2. एकांत में गुप्त बातचीत करते हुए व्यक्तियों पर झूठा आरोप लगाया हो, 3. अपनी स्त्री का[2] मर्म प्रकाशित किया हो, 4. मृषा उपदेश दिया हो, 5. कूड़ा लेख लिखा हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(3) तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. चोर की चुराई हुई वस्तु ली हो, 2. चोर को सहायता दी हो, 3. राज्य के विरुद्ध काम किया हो, 4. कूड़ा तोल - कूड़ा माप किया हो, 5. वस्तु में भेल-संभेल किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(4) चौथा स्थूल स्वदार सन्तोष परदार विवर्जन रूप[3] मैथुन विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. इत्तरियपरिग्गहिया से गमन किया हो, 2. अपरिग्गहिया से गमन किया हो, 3. अनंग क्रीड़ा की हो, 4. पराये का विवाह नाता कराया हो, 5. काम-भोग की तीव्र अभिलाषा की हो- इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(5) पाँचवाँ स्थूल परिग्रह विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. खेत- वत्थु का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 2. हिरण्य- सुवर्ण का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 3. धन-धान्य का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. दोपद-चौपद का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 5. कुविय का परिमाण अतिक्रमण किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(6) छट्ठा दिशिव्रत (दिशा परिमाण व्रत) के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. ऊँची, 2. नीची, 3. तिरछी दिशा का परिमाण अतिक्रमण किया हो, 4. क्षेत्र बढ़ाया हो, 5. क्षेत्र का परिमाण भूल जाने से, पंथ का संदेह पड़ने पर आगे चला हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(7) सातवाँ उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. पच्चक्खाण उपरान्त सचित्त का आहार किया हो, 2. सचित्त प्रतिबद्ध का आहार किया हो, 3. अपक्व का आहार किया हो, 4. दुपक्व का आहार किया हो, 5. तुच्छौषधि का आहार किया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

1. अवयव चाम आदि
2. 'स्त्रियाँ' अपने पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो, ऐसा बोलें तथा अविवाहित स्त्री, पुरुष का मर्म प्रकाशित किया हो ऐसा पाठ बोलना चाहिए।
3. स्त्री-स्वपति-संतोष, पर पुरुष विवर्जन रूप बोलें।

* इत्तरियपरिग्गहिया व अपरिग्गहिया के स्थान पर स्त्रियों को **'इत्तरियपरिग्गहिय'** व **'अपरिग्गहिय'** बोलना चाहिए।

पन्द्रह कर्मादान★ जो श्रावक-श्राविका को जानने योग्य हैं, किन्तु आचरण करने योग्य नहीं, उनके विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दंतवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निलंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सर दह तलाय सोसणया, 15. असई जण पोसणया, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- प्रस्तुत पाठ में महान् हिंसा वाले 15 कर्मों का उल्लेख है। इन महान् हिंसक कार्यों को करके आत्मा नरकादि गति का बंध कर लेता है। ये श्रावक-श्राविकाओं के लिए जानने योग्य हैं, आचरण करने योग्य नहीं। इनमें लगे दोषों का मिच्छामि दुक्कड़ं दिया गया है।}

(8) आठवाँ अनर्थदण्ड- विरमण व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. कामविकार पैदा करने वाली कथा की हो, 2. भण्ड-कुचेष्टा की हो, 3. मुखरी वचन बोला हो, 4. अधिकरण★ जोड़ रखा हो, 5. उपभोग-परिभोग अधिक बढ़ाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(9) नवमाँ सामायिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. मन, 2. वचन, 3. काय के अशुभ योग प्रवर्ताये हों, 4. सामायिक की स्मृति न रखी हो, 5. समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(10) दसवाँ देसावगासिक व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. नियमित सीमा के बाहर की वस्तु मँगवाई हो, 2. भिजवाई हो, 3. शब्द करके चेताया हो, 4. रूप दिखा करके अपने भाव प्रकट किये हों, 5. कंकर आदि फेंक कर दूसरे को बुलाया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(11) ग्यारहवाँ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. पौषध में शय्या-संथारा न देखा हो या अच्छी तरह से न देखा हो, 2. प्रमार्जन न किया हो या अच्छी तरह से न किया हो, 3. उच्चार-पासवण की भूमि को न देखी हो अथवा अच्छी तरह से न देखी हो, 4. पूँजी न हो या अच्छी तरह से न पूँजी हो, 5. उपवास युक्त पौषध का सम्यक् प्रकार से पालन न किया हो, {आवश्यक कार्य हेतु जाते समय आवस्सही-आवस्सही न बोला हो तथा वापस आते समय निस्सही-निस्सही न बोला हो} इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

(12) बारहवाँ अतिथि-संविभाग व्रत के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. अचित्त वस्तु सचित्त पर रखी हो, 2. अचित्त वस्तु सचित्त से ढाँकी हो, 3. साधुओं को भिक्षा देने के समय को टाल कर भावना भाई हो, 4. आप सूझता होते हुए भी दूसरों से दान दिलाया हो, 5. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से दान दिया हो, इन अतिचारों में से मुझे कोई दिवस सम्बन्धी अतिचार लगा हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

★ कर्मादान- अधिक हिंसा वाले धन्धों से आजीविका चलाना कर्मादान है अथवा जिन संसाधनों से कर्मों का निरन्तर बन्ध होता हो उन्हें कर्मादान कहते हैं।

★ अधिकरण- हिंसाकारी शस्त्र यानी हिंसा के साधन।

पाठ-18 : संलेखना के पाँच अतिचार का पाठ

संलेखना के विषय में जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोउं- 1. इहलोगासंसप्पओगे, 2. परलोगासंसप्पओगे, 3. जीवियासंसप्पओगे, 4. मरणासंसप्पओगे, 5. कामभोगासंसप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- अन्तिम मरण समय कषाय और शरीर को कृश करने के लिये जो तप विशेष किया जाता है, उसे संलेखना कहते हैं। प्रस्तुत पाठ में साधक, संलेखना तप के सम्बन्ध में लगने वाले पाँच अतिचारों की आलोचना कर मिथ्या दृष्कृत देता है।}

पाठ-19 : 99 अतिचारों का (समुच्चय का) पाठ

इस प्रकार 14 ज्ञान के, 5 समकित के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखणा (तप) के, इन 99 अतिचारों में से किसी भी अतिचार को जानते, अजानते, मन, वचन, काय से सेवन किया हो, कराया हो, करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाठ-20 : अठारह पाप स्थान का पाठ

अठारह पाप स्थान आलोउं- 1. प्राणातिपात, 2. मृषावाद, 3. अदत्तादान, 4. मैथुन, 5. परिग्रह, 6. क्रोध, 7. मान, 8. माया, 9. लोभ, 10. राग, 11. द्वेष, 12. कलह, 13. अभ्याख्यान, 14. पैशुन्य, 15. परपरिवाद, 16. रति अरति, 17. माया-मृषावाद, 18. मिथ्या दर्शन शल्य, इन 18 पाप स्थानों में से किसी का सेवन किया हो, सेवन कराया हो, सेवन करते हुए को भला जाना हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- इस पाठ में हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन एवं परिग्रह राग-द्वेष-क्रोधादि तथा अभ्याख्यान (झूठा कलंक लगाना) पैशुन्य (चुगली) परपरिवाद (निन्दा) तथा देव-गुरु-धर्म सम्बन्धी मिथ्या मान्यताओं आदि 18 पापों की आलोचना की जाती है।}

विधि- इच्छामि ठामि का पाठ पूर्ववत् कहें, किन्तु 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' के स्थान पर "इच्छामि आलोउं" कहें।

उक्त अतिचारों का चिन्तन करने के पश्चात् 'नमो अरिहंताणं' ऐसा बोलकर काउस्सग्ग पालें, कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ कहें।

तीन बार वंदना, प्रथम आवश्यक समाप्त हुआ। दूसरे आवश्यक की आज्ञा- पहले की तरह प्रकट में एक 'लोगस्स' कहे। तीन बार वन्दना- पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, दो आवश्यक समाप्त हुए, तीसरे आवश्यक की आज्ञा, दो बार इच्छामि खमासमणो देवें।

खमासमणो देने की विधि- खड़े-खड़े 'इच्छामि खमासमणो से मिउग्गहं' तक बोलें, उकडु आसन से बैठ कर 'निसीहि' बोलने के साथ ही आवर्तन इस प्रकार दें- प्रथम के तीन आवर्तन- 'अहो' - 'कायं' - 'काय'- इस प्रकार दो-दो अक्षरों से पूरे होते हैं। कमलमुद्रा में अंजलिबद्ध (हाथ जोड़कर) दोनों हाथों से गुरु-चरणों को स्पर्श करते हुए मन्द स्वर से **'अ'** अक्षर कहना, तत्पश्चात् अंजलिबद्ध हाथों को मस्तक पर लगाते हुए उच्च स्वर से **'हो'** अक्षर कहना, यह पहला आवर्तन है। इसी प्रकार **'का....यं'** और **'का....य'** शेष दो आवर्तन भी दिये जाते हैं।

अगले तीन आवर्तन- 1. 'जत्ता भे', 2. 'जवणि', 3. 'ज्जं च भे'- इस प्रकार तीन-तीन अक्षरों के होते हैं। कमल-मुद्रा से अंजलि बाँधे हुए दोनों हाथों से गुरुचरणों को स्पर्श करते हुए मन्दस्वर से **'ज'** अक्षर कहना चाहिये। पुनः हृदय के पास अंजलि लाते हुए मध्यम स्वर से **'त्ता'** अक्षर कहना तथा फिर अपने मस्तक को छूते हुए उच्च स्वर

से **'भे'** अक्षर कहना चाहिये। यह प्रथम आवर्तन है। इसी पद्धति से **'ज....व....णि'** और **'ज्जं....च....भे'** ये शेष दो आवर्तन भी करने चाहिये। प्रथम खमासमणो के पाठ में उपर्युक्त छह तथा इसी प्रकार दूसरे खमासमणो के पाठ में भी छह, कुल बारह आवर्तन होते हैं। 'वइक्कमं' तक पाठ बैठे-बैठे बोलें तथा 'आवस्सियाए' शब्द के साथ ही खड़े हो जावें, फिर शेष सम्पूर्ण पाठ बोलें तथा इसी प्रकार दूसरी बार भी 'खमासमणो' देवें, किन्तु इसमें 'आवस्सियाए पडिक्कमामि' नहीं बोलें व 'आवस्सियाए' शब्द आने पर खड़े न होवें, सम्पूर्ण पाठ बैठे-बैठे ही बोलें।

पाठ-21 : इच्छामि खमासमणो का पाठ

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं, निसीहि, अ हो, का यं का य संफासं खमणिज्जो भे! किलामो अप्पकिलंताणं बहु सुभेणं भे! दिवसो वइक्कंतो[1] ज त्ता भे, ज व णि, ज्जं च भे, खामेमि खमासमणो, देवसियं वइक्कमं आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तित्तिसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए, मण-दुक्कडाए वय-दुक्कडाए काय-दुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सव्वकालियाए, सव्वमिच्छोवयाराए, सव्व धम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स खमासमणो, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

{सारांश- इस पाठ से साधु-साध्वीजी की संयम रूप यात्रा की समाधि (साता) पूछकर अविनय आशातना के लिए क्षमायाचना की जाती है। सुसाधु हमारे सच्चे मार्गदर्शक हैं, उनके प्रति श्रद्धा एवं समादर करना हमारा परम कर्त्तव्य है।}

फिर तीन बार वन्दना करें।

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, ये तीन आवश्यक समाप्त हुए, चौथे आवश्यक की आज्ञा है, ऐसा बोलकर प्रथम आवश्यक के काउस्सग्ग में चिंतित पाठों को खड़े-खड़े या बायाँ घुटना खड़ा करके प्रकट में कहें, परन्तु पाठों के अन्त में आलोउं के स्थान पर तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं कहें तथा 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' के स्थान पर 'इच्छामि पडिक्कमिउं' कहें, फिर तस्स सव्वस्स का पाठ कहें।

पाठ-22 : तस्स सव्वस्स का पाठ

तस्स सव्वस्स देवसियस्स, अइयारस्स, दुब्भासिय - दुच्चिन्तिय - दुच्चिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि।

{सारांश- इस पाठ में साधक दिवस सम्बन्धी अशुभ चिन्तन, अशुभ वचन एवं काया सम्बन्धी अशुभ प्रवृत्तियों की आलोचना करता है।}

फिर तीन बार वन्दना-श्रावक सूत्र की आज्ञा है- ऐसा बोलें, फिर नीचे बैठकर दाहिना घुटना खड़ा करके नवकार मंत्र, करेमि भंते का पाठ बोलकर निम्न पाठ बोलें-

पाठ-23 : चत्तारि मंगलं का पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि, अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

अरिहन्तों का शरणा, सिद्धों का शरणा, साधुओं का शरणा, केवली प्ररूपित दया धर्म का शरणा।

चार शरणा दुःख हरणा और न शरणा कोय ।
जो भव्य प्राणी आदरे तो अक्षय अमर पद होय ।।

---

1. सायंकालीन प्रतिक्रमण में **'दिवसो वइक्कंतो'** बोलें। किन्तु रात्रि-प्रतिक्रमण के समय **'राई वइक्कंता'** पाक्षिक प्रतिक्रमण में **'पक्खो वइक्कंतो'** चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में **'चाउम्मासो वइक्कंतो'**, तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में **'संवच्छरो वइक्कंतो'** बोलें।

{सारांश- इस पाठ में अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली प्ररुपित धर्म, इन चार को श्रेष्ठ, उत्तम, मंगल एवं शरण रूप माना गया है। संसार में ये चार ही सच्चे शरण हैं। इनमें हमारी श्रद्धा सदा बनी रहे। ये ही हमें अक्षय, शाश्वत सुख रूप मोक्ष को देने वाले हैं।}

फिर इच्छामि ठामि, इच्छाकारेणं व आगमे तिविहे का पाठ बोलकर निम्न पाठ बोलें-

पाठ-24 : दंसण समत्त का पाठ

दंसण समत्त परमत्थ संथवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वा वि।
वावण्ण कुदंसण वज्जणा, य समत्त सद्दहणा।।

इअ समत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- 1. संका, 2. कंखा, 3. वितिगिच्छा, 4. परपासंड पसंसा, 5. परपासंड संथवो, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- प्रस्तुत पाठ में सुश्रद्धा जगाने एवं उसे सुरक्षित रखने के चार उपायों का उल्लेख किया गया है। ये चारों श्रद्धान भी कहलाते हैं।}

पाठ-25 से 36 : 12 व्रत अतिचार सहित

1. पहला अणुव्रत - थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, त्रसजीव बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, जान के, पहचान के, संकल्प करके उसमें सगे सम्बन्धी व स्व शरीर के भीतर में पीड़ाकारी, सापराधी को छोड़कर निरपराधी को आकुट्टी की बुद्धि से हनने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे पहला स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

   {सारांश- मोटी (स्थूल) हिंसा का त्याग- श्रावक का पहला अणुव्रत है। इसमें श्रावक बेइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के निरपराध जीवों की जानकर संकल्पपूर्वक हिंसा करने का त्याग करता है। अन्त में इस व्रत में लगे 5 अतिचारों की आलोचना करता है।}

2. दूजा अणुव्रत - थूलाओ मुसावायाओ वेरमणं, कन्नालीए, गोवालीए, भोमालीए, णासावहारो, कूडसक्खिज्जे इत्यादि मोटा झूठ बोलने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं दूजा स्थूल मृषावाद विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- सहस्सब्भक्खाणे, रहस्सब्भक्खाणे, सदारमंत[1] भेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

   {सारांश- स्थूल (मोटा) झूठ का त्याग रूप श्रावक का यह दूसरा अणुव्रत है। इस पाठ से श्रावक-श्राविका, कन्या, वर या मनुष्य सम्बन्धी, गाय आदि पशु सम्बन्धी, भूमि-भवन सम्बन्धी, धरोहर दबाने और झूठी साक्षी देने रूप मोटे झूठ का त्याग करता है। पाठ के अन्त में इस व्रत में लगे अतिचारों की आलोचना करता है।}

3. तीजा अणुव्रत - थूलाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं खात खनकर, गाँठ खोलकर, ताले पर कूँची लगाकर, मार्ग में चलते हुए को लूटकर, पड़ी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पच्चक्खाण, सगे सम्बन्धी, व्यापार सम्बन्धी तथा पड़ी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पच्चक्खाण जावज्जीवाए दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- तेनाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुल्ल कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

---

1. स्त्रियाँ **'सदार मंत भेए'** के स्थान पर **'सपइ मंत भेए'** बोलें।

{सारांश- स्थूल (मोटी) चोरी का त्याग करना रूप श्रावक का तीसरा अणुव्रत है। इस पाठ से श्रावक-श्राविका दीवार आदि तोड़कर, तिजोरी, अलमारी, अटैची, बैग, गाँठ आदि खोलकर, दरवाजे, ताला आदि खोलकर अथवा मार्गादि में पड़ी हुई किसी के स्वामित्व की वस्तु लेना इत्यादि स्थूल चोरी (अदत्त) का त्याग करता है। पाठ के अन्त में इस व्रत में लगे अतिचारों की आलोचना भी करता है।}

4. चौथा अणुव्रत - थूलाओ मेहुणाओ वेरमणं, सदार[1] संतोसिए, अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए देव-देवी संबंधी दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा मनुष्य तिर्यंच संबंधी एगविहं एगविहेणं, न करेमि कायसा एवं चौथा स्थूल स्वदार सन्तोष परदार विवर्जन रूप मैथुन विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे[2], अनंगकीडा, परविवाह-करणे, कामभोगा तिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- चौथे अणुव्रत में श्रावक-श्राविका अपनी पत्नी/पति में सन्तोष/मर्यादा करके शेष सभी प्रकार के मैथुन का त्याग करता है। अन्त में व्रत में लगे दोषों का मिच्छामि दुक्कडं देता है।}

5. पाँचवाँ अणुव्रत - थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं खेत्त-वत्थु का यथा परिमाण, हिरण्ण-सुवण्ण का यथा परिमाण, धण-धण्ण का यथा परिमाण, दुप्पय-चउप्पय का यथा परिमाण, कुविय का यथा परिमाण एवं जो यथा परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, एगविहं तिविहेणं, न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं पाँचवाँ, स्थूल परिग्रह विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे, धणधण्णप्पमाणाइक्कमे, दुप्पय चउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो, कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- पाँचवें अणुव्रत में श्रावक-श्राविकाएँ, क्षेत्र- खुली जमीन, वस्तु- मकान, दुकान आदि, हिरण्य-सुवर्ण- सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि, धन-धान्य- रुपये-पैसे, बोण्ड, शेयर, अनाज आदि, द्विपद-चतुष्पद - परिवार, नौकरादि, गाय-भैंस आदि पशु-पक्षी, कुविय- घरेलु उपकरण, फर्नीचर आदि पदार्थों की मर्यादा करके शेष परिग्रह का त्याग करता है। पाठ के अन्त में इस व्रत में लगे अतिचारों की आलोचना भी करता है।}

6. छट्ठा दिशिव्रत - उड्ढदिसी का यथा परिमाण, अहोदिसी का यथा परिमाण, तिरियदिसी का यथा परिमाण एवं जो यथा परिमाण किया है, उसके उपरान्त स्वेच्छा-काया से आगे जाकर पाँच आस्रव सेवन का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए एगविहं[3] तिविहेणं न करेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं छट्ठादिशिव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- उड्ढदिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरियदिसिप्प- माणाइक्कमे, खित्तवुड्ढी, सइ अन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- श्रावक छठे व्रत में तृष्णा पर अंकुश लगाने हेतु ऊँची-नीची, तिरछी (पूर्वादि चारों) दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा करता है। इससे अहिंसा धर्म के पालन में भी वह समर्थ बनता है।}

7. सातवाँ व्रत - उपभोग परिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे- उल्लणियाविहि, दंतणविहि, फलविहि, अब्भंगणविहि, उवट्टणविहि, मज्जणविहि, वत्थविहि, विलेवणविहि, पुप्फविहि, आभरणविहि, धूवविहि, पेज्जविहि, भक्खणविहि, ओदणविहि, सूपविहि, विगयविहि, सागविहि, महुरविहि जीमणविहि, पाणियविहि, मुखवासविहि, वाहणविहि, उवाणहविहि, सयणविहि, सचित्तविहि, दव्वविहि, इन 26 बोलों का यथा परिमाण किया है, इसके उपरान्त उपभोग-परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जावज्जीवाए, एगविहं, तिविहेणं, न करेमि,

---

1. स्त्री को सदार संतोसिए के स्थान पर **'सपइ संतोसिए'** व पूर्ण त्यागी को **'सव्वं मेहुणविहिं'** बोलना चाहिए।

2. इत्तरियपरिग्गहियागमणे व अपरिग्गहियागमणे के स्थान पर स्त्रियों को **'इत्तरियपरिग्गहियगमणे'** व **'अपरिग्गहियगमणे'** बोलना चाहिये।

3. एगविहं तिविहेणं की जगह दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि भी बोलते हैं।

मणसा, वयसा, कायसा एवं सातवाँ व्रत उपभोग-परिभोग दुविहे पण्णत्ते तं जहा- भोयणाओ य कम्मओ य भोयणाओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- सचित्ताहारे, सचित्त पडिबद्धाहारे अप्पउलिओसहि भक्खणया, दुप्पउलिओसहि भक्खणया, तुच्छोसहि भक्खणया, कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइं तं जहा ते आलोउं- 1. इंगालकम्मे, 2. वणकम्मे, 3. साडीकम्मे, 4. भाडीकम्मे, 5. फोडीकम्मे, 6. दंतवाणिज्जे, 7. लक्खवाणिज्जे, 8. रसवाणिज्जे, 9. केसवाणिज्जे, 10. विसवाणिज्जे, 11. जंतपीलणकम्मे, 12. निल्लंछणकम्मे, 13. दवग्गिदावणया, 14. सर दह तलाय सोसणया, 15. असईजणपोसणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- इस व्रत द्वारा श्रावक उपभोग-परिभोग के अन्तर्गत खाने, पीने, पहनने-ओढ़ने, नहाने-धोने, वाहन, सचित्त द्रव्य आदि 26 बोलों की मर्यादा करता है और शेष का त्याग करता है। आवश्यकताएँ सीमित करने से साधक जीवन में संयमित बनकर सुख-शान्ति का अनुभव करता है।}

8. आठवाँ अनर्थदण्ड-विरमण व्रत - चउव्विहे अणट्ठादंडे पण्णत्ते तं जहा- अवज्झाणायरिये, पमायायरिये, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवएसे एवं आठवाँ अणट्ठादण्ड सेवन का पच्चक्खाण, जिसमें आठ आगार- आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं, आगारेहिं, अण्णत्थ जावज्जीवाए, दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा एवं आठवाँ अनर्थदण्ड विरमण व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोगपरिभोगाइरित्ते, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- इस पाठ में बिना प्रयोजन अर्थात् अनर्थ में होने वाली पाप-क्रियाओं का त्याग किया गया है। ये क्रियाएँ अपध्यान अर्थात् आर्तध्यान, रौद्रध्यान, प्रमाद करना, पाप क्रियाओं हेतु सलाह- उपदेश देना तथा हिंसक साधन एकत्र करना/देना रूप हैं।}

9. नवमाँ सामायिक व्रत - सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, सामायिक का अवसर आये, सामायिक करूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एवं नवमें सामायिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

10. दसवाँ देसावगासिक व्रत - दिन प्रति प्रभात से प्रारम्भ करके पूर्वादिक छहों दिशाओं में जितनी भूमिका की मर्यादा रखी है, उसके उपरान्त पाँच आस्रव सेवन निमित्त स्वेच्छा काया से आगे जाने तथा दूसरों को भेजने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तथा जितनी भूमि की हद रखी है उसमें जो द्रव्यादि की मर्यादा की है, उसके उपरान्त उपभोग-परिभोग वस्तु को भोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं एगविहं तिविहेणं, न करेमि, मणसा वयसा कायसा एवं दसवें देसावगासिक व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहियापुग्गलपक्खेवे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- यह संवर करने और 14 नियम ग्रहण करने का पाठ है। संवर द्वारा साधक दिन-रात के लिए हिंसादि का त्याग करता है तथा 14 नियमों के चिन्तन सें खाने-पीने, दिशा, वाहन, स्नान आदि की मर्यादा करके बहुत पापों से मुक्त बन जाता है।}

11. ग्यारहवाँ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत- असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावण्णग विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्ज जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, पौषध का अवसर आये, पौषध करूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एवं ग्यारहवाँ प्रतिपूर्ण पौषध व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- 1. अप्पडिलेहिय - दुप्पडिलेहिय

सेज्जासंथारए, 2. अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए, 3. अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवण भूमि, 4. अप्पमज्जिय, दुप्पमज्जिय उच्चार पासवण भूमि, 5. पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- यह पौषध ग्रहण करने का पाठ है। साधक पौषध व्रत में चारों प्रकार के आहार, कुशील, मणि-मोती, स्वर्णाभूषण, फूल-माला, चन्दन, शस्त्र-अस्त्र और समस्त पापों का त्याग करता है। यह व्रत पूरे दिन-रात के लिए अथवा कम से कम पाँच प्रहर के लिए ग्रहण किया जाता है। इस व्रत की साधना से आत्मिक गुणों की पुष्टि एवं आत्मशक्ति का विकास होता है।}

12. बारहवाँ अतिथि संविभाग व्रत - समणे निग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं, असण - पाण - खाइम - साइम - वत्थ - पडिग्गह - कम्बल - पायपुंछणेणं पाडिहारिय पीढ - फलग - सेज्जा - संथारएणं, ओसह - भेसज्जेणं, पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सद्दहणा प्ररूपणा तो है, साधु-साध्वियों का योग मिलने पर निर्दोष दान दूँ, तब फरसना करके शुद्ध होऊँ एवं बारहवें अतिथि संविभाग व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं - सचित्त निक्खेवणया, सचित्त पिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरियाए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- प्रस्तुत पाठ में साधु साध्वीजी को 14 प्रकार की वस्तुओं का शुद्ध दान देने का उल्लेख है। इनको जानकर साधक, साधु-साध्वीजी को निर्दोष दान देता हुआ सुपात्र दान का लाभ प्राप्त करता है।}

फिर पालथी आसन से बैठकर बड़ी संलेखणा का पाठ बोलें।

पाठ-37 : बड़ी संलेखणा का पाठ

अह भंते! अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा पौषधशाला पूँज, पूँज कर उच्चारपासवण भूमि पडिलेह, पडिलेह कर गमणागमणे पडिक्कम, पडिक्कम कर दर्भादिक संथारा, संथार संथार कर, दर्भादिक संथारा दुरूह दुरूह कर, पूर्व या उत्तर दिशा सम्मुख पल्यंकादिक आसन से बैठे बैठ कर, करयल संपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी- नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं ऐसे अनन्त सिद्ध भगवान को नमस्कार करके, 'नमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपाविउकामाणं' जयवन्ते वर्तमान काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थंकर भगवान को नमस्कार करके अपने धर्माचार्य जी को नमस्कार करता हूँ। साधु प्रमुख चारों तीर्थों को खमा के, सर्व जीव राशि को खमाकर के, पहले जो व्रत आदरे हैं, उनमें जो अतिचार दोष लगे हैं, वे सर्व आलोच के, पडिक्कम करके, निंद के, निःशल्य होकर के, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि, सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि, सव्वं अदिण्णादाणं पच्चक्खामि, सव्वं मेहुणं पच्चक्खामि, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि, सव्वं कोहं माणं जाव मिच्छादंसणसल्लं, सव्वं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, मणसा, वयसा, कायसा, ऐसे अठारह पापस्थान पच्चक्ख के सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, ऐसे चारों आहार पच्चक्ख के जं पियं, इमं सरीरं इट्ठं, कंतं, पियं, मणुण्णं, मणामं, धिज्जं, विसासियं, संमयं, अणुमयं, बहुमयं, भण्डकरण्डगसमाणं, रयणकरण्डगभूयं, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसमसगा, मा णं वाइयं, पित्तियं, कप्फियं, संभीमं सण्णिवाइयं, विविहा रोगायंका परीसहा उवसग्गा फासा फुसंतु एवं पि य णं चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु ऐसे शरीर को वोसिरा के कालं अणवकंखमाणे विहरामि, ऐसे मेरी सद्दहणा प्ररुपणा तो है, फरसना करूँ तब शुद्ध होऊँ, ऐसे अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा ते आलोउं- इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

{सारांश- प्रस्तुत पाठ, संलेखना संथारा की विधि और उसके पच्चक्खाण का पाठ है। इस पाठ से साधक, जीवन के अन्तिम समय में धर्म की शरण ग्रहण करके अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान और आचार्यजी को वन्दन करता हुआ, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ से क्षमायाचना करता है। पश्चात् जीवन में लगे दोषों की आलोचना करके समस्त पापों का पूर्ण रूप से त्याग करता है। वह सब प्रकार के आहार का तथा प्रिय शरीर का भी त्याग करता है, उसे धर्म की शरण में समर्पित करता है। यह संथारा आत्महत्या नहीं, यह तो निर्भय और निष्पाप बनकर धर्म की शरण में मृत्यु का वरण है।}

फिर खड़े होकर 18 पापस्थान, इच्छामि ठामि व तस्स धम्मस्स का पाठ बोलें।

पाठ-38 : तस्स धम्मस्स का पाठ

तस्स धम्मस्स केवलिपण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि
विराहणाए तिविहेणं पडिक्कंतो वंदामि जिण चउव्वीसं ।

{सारांश- प्रस्तुत पाठ में समस्त विराधना से निवृत्त होकर केवली भाषित शुद्ध धर्म की आराधना के लिए उद्यत होने का भाव भरा है। इसके साथ तीर्थंकर भगवन्तों को वन्दना की गई है।}

फिर दो बार विधि सहित खमासमणो देवें, बाद में पाँच पदों की भाव वन्दना बोलें।

39 से 43 तक पाँच पदों की भाव वन्दना

प्रथम सात, अक्षर पढ़ो, पाँच पढ़ो चित्त लाय ।
सात, सात, नव अक्षरा, पढ़त पाप झड़ जाय ।।

1. पहले पद श्री अरिहंत भगवान जघन्य बीस तीर्थंकरजी, उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी, उनमें वर्तमान काल में 20 विहरमानजी महाविदेह क्षेत्र में विचरते हैं। एक हजार आठ लक्षण के धरणहार, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणी कर के विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, पूजनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित- (1) अनन्त ज्ञान, (2) अनन्त दर्शन, (3) अनन्त चारित्र, (4) अनन्त बल वीर्य, (5) दिव्य ध्वनि, (6) भामण्डल, (7) स्फटिक सिंहासन, (8) अशोक वृक्ष, (9) कुसुम वृष्टि, (10) देवदुन्दुभि, (11) छत्र धरावें, (12) चँवर बिजावें, पुरुषाकार पराक्रम के धरणहार, ऐसे अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में विचरते हैं। जघन्य दो क्रोड़ केवली, उत्कृष्ट नव क्रोड़ केवली, केवल ज्ञान, केवल दर्शन के धरणहार, सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जाननहार-

सवैया- नमूँ श्री अरिहंत, कर्मों का किया अन्त ।
हुआ सो केवलवन्त, करुणा भण्डारी है ।।1।।
अतिशय चौतीस धार, पेंतीसवाणी उच्चार ।
समझावे नर-नार, पर उपकारी है ।।2।।
शरीर सुन्दरकार, सूरज सो झलकार ।
गुण है अनन्त सार, दोष परिहारी है ।।3।।
कहत है तिलोक रिख, मन वच काया करी ।
लुली-लुली बारम्बार, वन्दना हमारी है ।।4।।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवान दीनदयाल! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे अरिहन्त भगवान्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये, मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीष नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगल, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदाकाल शरण होवे।

2. दूजे पद श्री सिद्ध भगवान पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध हुए हैं। आठ कर्म खमा कर मोक्ष पहुँचे हैं- (1) तीर्थसिद्ध; (2) अतीर्थ सिद्ध; (3) तीर्थंकर सिद्ध; (4) अतीर्थंकर सिद्ध; (5) स्वयं बुद्ध सिद्ध; (6) प्रत्येक बुद्ध सिद्ध; (7) बुद्ध बोधित सिद्ध; (8) स्त्रीलिंग सिद्ध; (9) पुरुष लिंग सिद्ध; (10) नपुंसक लिंग सिद्ध; (11) स्वलिंग सिद्ध; (12) अन्य लिंग सिद्ध; (13) गृहस्थ लिंग सिद्ध; (14) एक सिद्ध; (15) अनेक सिद्ध;

जहाँ जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, ज्योत में ज्योत विराजमान सकल कार्य सिद्ध करके चौदह प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए हैं जो (1) अनन्त ज्ञान; (2) अनन्त दर्शन; (3) निराबाध सुख; (4) क्षायिक समकित; (5) अटल अवगाहना; (6) अमूर्त; (7) अगुरु लघु; (8) अनन्त आत्म-सामर्थ्य; ये आठ गुण कर के सहित हैं।

सवैया- सकल करम टाल, वश कर लियो काल ।
मुगति में रह्या माल, आत्मा को तारी है ।।1।।
देखत सकल भाव, हुआ है जगत राव ।
सदा ही क्षायिक भाव, भये अविकारी है ।।2।।
अचल अटल रूप, आवे नहीं भव कूप ।
अनूप स्वरूप ऊप, ऐसे सिद्ध धारी है ।।3।।
कहत है तिलोक रिख, बताओ ए वास प्रभो! ।
सदा ही उंगते सूर[1], वन्दना हमारी है ।।4।।

ऐसे श्री सिद्ध भगवान दीनदयाल आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे सिद्ध भगवान्! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये, मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदाकाल शरण होवे।

---

1. सायंकाल के समय "सदा ही सायंकाल" बोलें।

3. तीजे पद श्री आचार्य जी महाराज 36 गुण करके विराजमान, पाँच महाव्रत पाले, पाँच आचार पाले, पाँच इन्द्रियाँ जीते, चार कषाय टाले, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, पाँच समिति, तीन गुप्ति शुद्ध आराधे। ये 36 गुण और आठ सम्पदा- (1) आचार सम्पदा; (2) श्रुत सम्पदा; (3) शरीर सम्पदा; (4) वचन सम्पदा; (5) वाचना सम्पदा; (6) मति सम्पदा; (7) प्रयोगमति सम्पदा और (8) संग्रह परिज्ञा सम्पदा सहित है।

सवैया- गुण है छत्तीस पूर, धरत धरम उर ।
मारत करम क्रूर, सुमति विचारी है ।।1।।
शुद्ध सो आचारवन्त, सुन्दर है रूप कंत ।
भणिया सब ही सिद्धान्त, वाचणीसु प्यारी है ।।2।।
अधिक मधुर वेण, कोइ नहीं लोपे केण ।
सकल जीवों का सेण, कीरति अपारी है ।।3।।
कहत है तिलोक रिख, हितकारी देत सीख ।
ऐसे आचारज जी को, वन्दना हमारी है ।।4।।

ऐसे आचार्य जी महाराज न्याय पक्षी, भद्रिक परिणामी, परम पूज्य, कल्पनीय, अचित्त वस्तु के ग्रहणहार, सचित्त के त्यागी, वैरागी, महागुणी, गुणों के अनुरागी, सौभागी हैं। ऐसे श्री आचार्य जी महाराज! आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो, तो हे आचार्य जी महाराज! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करें। मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा काल शरण होवे।

4. चौथे पद श्री उपाध्याय जी महाराज 25 गुण करके विराजमान, ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरण सत्तरी, करण सत्तरी, ये पच्चीस गुण करके सहित हैं। ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जाने, चौदह पूर्व के पाठक और बत्तीस सूत्रों के जानकार हैं-

ग्यारह अंग- आचारांग, सूयगडांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अणुत्तरोववाइय, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र।

बारह उपांग- उववाइ, रायप्पसेणी, जीवाजीवाभिगम, पन्नवणा, जम्बूदीवपन्नत्ती, चन्दपन्नत्ती, सूरपन्नत्ती, निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा।

चार मूल सूत्र- उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी सूत्र और अनुयोग द्वार सूत्र।

चार छेद- दशाश्रुतस्कन्ध, वृहत्कल्प, व्यवहार सूत्र, निशीथ सूत्र और बत्तीसवाँ आवश्यक सूत्र तथा अनेक ग्रंथों के जानकार, सात नय, चार निक्षेप, निश्चय-व्यवहार, चार प्रमाण आदि स्वमत तथा अन्यमत के जानकार। मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नहीं पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

सवैया- पढ़त इग्यारह अंग, करमासुँ करे जंग ।
पाखण्डी को मान भंग, करण हुशियारी है ।।1।।
चवदे पूर्वधार, जानत आगम सार ।
भवियन के सुखकार, भ्रमता निवारी है ।।2।।
पढ़ावे भविक जन, स्थिर कर देत मन ।
तप करे तावे तन, ममता कुँ मारी है ।।3।।
कहत है तिलोक रिख, ज्ञान भानु परतिख ।
ऐसे उपाध्याय जी को वंदना हमारी है ।।4।।

ऐसे उपाध्याय जी महाराज, मिथ्यात्व रूप अन्धकार के मेटनहार, समकित रूप उद्योत के करणहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करने वाले, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्याय जी महाराज आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो, तो हे उपाध्याय जी महाराज! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करें। मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीष नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा काल शरण होवे।

5. पाँचवें पद 'नमो लोए सव्वसाहूणं' अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र रूप लोक के विषय में सर्व साधुजी महाराज जघन्य दो हजार क्रोड़, उत्कृष्ट नव हजार क्रोड़ जयवन्ता विचरे। पाँच महाव्रत पाले, पाँच इन्द्रिय जीते, चार कषाय टाले, भाव सच्चे, करण सच्चे, जोग सच्चे, क्षमावंत, वैराग्यवंत, मन समाधारणया, वय समाधारणया, काय समाधारणया, नाण सम्पन्ना, दंसण सम्पन्ना, चारित्त सम्पन्ना, वेदनीय समाअहियासन्निया, मारणंतिय समाअहियासन्निया, ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित हैं। पाँच आचार पाले, छहकाय की रक्षा करे, सात भय छोड़े, आठ मद त्यागे, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य पाले, दस प्रकारे यतिधर्म धारे, बारह भेदे तपस्या करे, सतरह भेदे संयम पाले, अठारह पापों को त्यागे, बाईस परीषह जीते, तीस महामोहनीय कर्म निवारे, तैतीस आशातना टाले, बयालीस दोष टाल कर आहार पानी लेवे, सैंतालीस दोष टाल कर भोगे, बावन अनाचार टाले, तेड़िया (बुलाये) आवे नहीं, नेतीया जीमे नहीं, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करे, नंगे पैर चले इत्यादि काय क्लेश करे और मोह ममता रहित है।

सवैया- आदरी संयम भार, करणी करे अपार ।
समिति गुप्ति धार, विकथा निवारी है ।।1।।
जयणा करे छः काय, सावज्ज न बोले वाय ।
बुझाय कषाय लाय, किरिया भण्डारी है ।।2।।
ज्ञान भणे आठों याम, लेवे भगवन्त नाम ।
धरम को करे काम, ममता कुँ मारी है ।।3।।
कहत है तिलोक रिख, करमों को टाले विख ।
ऐसे मुनिराज ताकूँ, वन्दना हमारी है ।।4।।

ऐसे मुनिराज जी महाराज, आपकी दिवस सम्बन्धी अविनय आशातना की हो तो हे मुनिराज जी महाराज! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये। मैं हाथ जोड़, मान मोड़, शीश नमाकर तिक्खुत्तो के पाठ से 1008 बार वन्दना नमस्कार करता हूँ।

तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं, करेमि, वंदामि, नमंसामि, सक्कारेमि, सम्माणेमि, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, पज्जुवासामि, मत्थएण वंदामि।

आप मांगलिक हो, आप उत्तम हो, हे स्वामिन्! हे नाथ! आपका इस भव, पर भव, भव-भव में सदा काल शरण होवे।

फिर सीधे बैठकर अनन्त चौबीसी के दोहे बोलें।

पाठ-44 : अनन्त चौबीसी का पाठ

अनन्त चौबीसी जिन नमूँ, सिद्ध अनन्ता क्रोड़ ।
केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दूँ बे कर जोड़ ।।1।।
दोय क्रोड़ केवल धरा, विहरमान जिन बीस ।
सहस्र युगल क्रोड़ी नमूँ, साधु नमूँ निश दीस ।।2।।
धन साधु धन साध्वी, धन धन है जिन धर्म ।
ये सुमर्यां पातक झरे, टूटे आठों ही कर्म ।।3।।
अरिहन्त सिद्ध समरूँ सदा, आचारज उपाध्याय ।
साधु सकल के चरण को, वन्दूँ शीश नमाय ।।4।।
अँगूठे अमृत बसे, लब्धि तणा भण्डार ।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार ।।5।।

पाठ-45 : आयरिय उवज्झाए का पाठ

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल गणे य ।
जे मे केई कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ।।1।।
सव्वस्स समण संघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।2।।
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म निहिय निय चित्तो ।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ।।3।।

{सारांश- इस पाठ में परमोपकारी आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल, गण के साधु-साध्वी से क्षमायाचना की गई है। साथ ही चतुर्विध संघ एवं समस्त जीवों से भी क्षमा माँगी गई है।}

पाठ-46 : अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र का पाठ

अढ़ाई द्वीप पन्द्रह क्षेत्र में तथा उसके बाहर, श्रावक श्राविका दान देवे, शील पाले, तपस्या करे, शुद्ध भावना भावे, संवर करे, सामायिक करे, पौषध करे, प्रतिक्रमण करे, तीन मनोरथ चिन्तवे, चौदह नियम चितारे, जीवादि नव पदार्थ जाने, ऐसे श्रावक के इक्कीस गुण करके युक्त, एक व्रतधारी जाव बारह व्रतधारी, भगवन्त की आज्ञा

में विचरे, ऐसे बड़ों से हाथ जोड़, पैर पड़कर क्षमा माँगता हूँ। आप क्षमा करें, आप क्षमा करने योग्य हैं और शेष सभी को खमाता हूँ।

पाठ-47 : चौरासी लाख जीव योनि का पाठ

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख बेइन्द्रिय, दो लाख तेइन्द्रिय, दो लाख चउरिन्द्रिय, चार लाख देवता, चार लाख नारकी, चार लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य, ऐसे चार गति, चौबीस दण्डक, चौरासी लाख जीव योनि में सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त जीवों में से किसी जीव का हालते, चालते, उठते, बैठते, सोते, जागते हनन किया हो, हनन कराया हो, हनता प्रति अनुमोदन किया हो, छेदा हो, भेदा हो, किलामना उपजाई हो, तो मन वचन काय करके (1824120) अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस प्रकारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पाठ-48 : क्षमापना का पाठ

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणई ।।1।।
एवमहं आलोइय, निन्दिय गरिहिय दुगुंच्छियं सम्मं ।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिण चउव्वीसं ।।2।।

{सारांश- यह क्षमापना पाठ है। इसमें साधक क्षमाशील बनकर सभी जीवों को खमाते हुए क्षमायाचना करता है। अन्त में मोक्षमार्ग बतलाने वाले तीर्थंकर भगवन्तों को वन्दना करता है।}

इसके पश्चात् अठारह पापस्थान का पाठ बोलें।

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वंदना, चौथा प्रतिक्रमण, ये चार आवश्यक समाप्त हुए। पाँचवें आवश्यक की आज्ञा है।

पाठ-49 : प्रायश्चित्त का पाठ

देवसिय पायच्छित्त विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं।

{सारांश- प्रस्तुत पाठ में दिवस सम्बन्धी प्रायश्चित्त की विशुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा की जाती है।}

फिर नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठामि और तस्सउत्तरी का पाठ झाणेणं तक बोल कर चार लोगस्स[1] का काउस्सग्ग अप्पाणं वोसिरामि कहने के साथ ही काउस्सग्ग करें। फिर काउस्सग्ग पूर्ण होने पर "नमो अरिहंताणं" कह कर काउस्सग्ग पारें। काउस्सग्ग-शुद्धि का पाठ बोलें, फिर एक लोगस्स प्रकट व दो बार सविधि खमासमणा देवें।

तीन बार वन्दना- पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पाँचवाँ कायोत्सर्ग, ये पाँच आवश्यक समाप्त हुए, छठे आवश्यक की आज्ञा- यदि गुरुदेव हों तो उनसे, वे न हों तो बड़े श्रावक जी से पच्चक्खाण करें अन्यथा स्वयं ही निम्न पाठ से पच्चक्खाण करें।

---

1. देवसिय व राइय को 4, पक्खी को 8, चौमासी को 12 और संवत्सरी को 20 लोगस्स का काउस्सग्ग करें।

पाठ-50 : समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ

गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं, साड्ढपोरिसियं, चउविहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अपनी-अपनी धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण, अण्णत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि[1]।

{सारांश- यह समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ है। इस पाठ से नवकारसी, पौरसी आदि के पच्चक्खाण किये, करवाए जाते हैं। इसके अलावा नवकारसी, पौरसी, एकासन, उपवास, आयंबिल आदि के अलग से 10 पच्चक्खाणों के पाठ भी निर्धारित किए गए हैं।}

पाठ-51 : अन्तिम पाठ

पहला सामायिक, दूसरा चउवीसत्थव, तीसरी वन्दना, चौथा प्रतिक्रमण, पाँचवाँ काउस्सग्ग और छट्ठा प्रत्याख्यान, इन 6 आवश्यकों में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते-अजानते कोई दोष लगा हो तथा पाठ उच्चारण करते समय काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक, विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान की साक्षी से दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण, अव्रत का प्रतिक्रमण, प्रमाद का प्रतिक्रमण, कषाय का प्रतिक्रमण, अशुभ योग का प्रतिक्रमण, इन पाँच प्रतिक्रमणों में से कोई प्रतिक्रमण नहीं किया हो या अविधि से किया हो तथा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप सम्बन्धी कोई दोष लगा हो तो दिवस सम्बन्धी तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

गये काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल की सामायिक, आगामी काल के पच्चक्खाण, जो भव्य जीव करते हैं, कराते हैं, करने वाले का अनुमोदन करते हैं, उन महापुरुषों को धन्य है, धन्य है।

सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था, ये पाँच व्यवहार समकित के लक्षण हैं, इनको मैं धारण करता हूँ। देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ, केवली भाषित दयामय धर्म, ये तीन तत्त्व सार, संसार असार, भगवन्त महाराज! आपका मार्ग सच्चं, सच्चं, सच्चं, थव थुई मंगलं।

दोहा

आगे आगे दव बले, पीछे हरिया होय ।
बलिहारी उस वृक्ष की, जड़ काट्या फल होय ।।

फिर बायाँ घुटना खड़ा करके दो बार नमोत्थुणं देवें, बाद में सामूहिक वन्दना करके परस्पर में क्षमायाचना करें, तत्पश्चात् चौबीसी, भजन आदि बोलें।

॥ सविधि प्रतिक्रमण सूत्र समाप्त ॥

1. स्वयं पच्चक्खाण करे तो वोसिरामि तथा दूसरों को कराने हो तो वोसिरे-वोसिरे बोलें।

प्रतिक्रमण की विधि

1. चउवीसत्थव की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

नवकार मंत्र, इच्छाकारेणं, तस्सउत्तरी, एक लोगस्स के पाठ का काउस्सग्ग, काउस्सग्ग पारने का पाठ, एक लोगस्स प्रकट, दो बार नमोत्थुणं।

2. प्रतिक्रमण ठाने (करने) की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

इच्छामि णं भंते, नवकार मंत्र।

3. प्रथम आवश्यक की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

करेमि भंते, इच्छामि ठामि, तस्स उत्तरी, 99 अतिचारों का काउस्सग्ग (काउस्सग्ग में आगमे तिविहे, अरिहंतो महदेवो, बारह स्थूल, छोटी संलेखना, 99 अतिचारों (समुच्चय) का पाठ, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि का चिन्तन करें) काउस्सग्ग पारने का पाठ।

इच्छामि ठामि का पाठ जब काउस्सग्ग करने से पहले बोलें तो 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं' बोलना चाहिये तथा काउस्सग्ग में बोलें तो 'इच्छामि आलोउं' बोलना चाहिये। इन दोनों स्थिति को छोड़कर जब प्रकट में इच्छामि ठामि का पाठ बोलें तो 'इच्छामि पडिक्कमिउं' बोलना चाहिये।

काउस्सग्ग में सभी पाठों के अन्त में 'मिच्छा मि दुक्कडं' के स्थान पर 'आलोउं' बोलना चाहिये।

4. दूसरे आवश्यक की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

लोगस्स का पाठ एक बार बोलें।

5. तीसरे आवश्यक की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

इच्छामि खमासमणो का पाठ विधिसहित दो बार बोलें।

6. चौथे आवश्यक की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

(अ) आगमे तिविहे, अरिहंतो महदेवो, बारह स्थूल, छोटी संलेखना, 99 अतिचारों का पाठ, अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि, तस्स सव्वस्स का पाठ।

(ब) श्रावकसूत्र जी की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

दाहिना घुटना खड़ा करके बैठें व निम्न पाठ बोलें-

नवकार मंत्र, करेमि भंते, चत्तारि मंगलं, इच्छामि ठामि, इच्छाकारेणं, आगमे तिविहे, दंसण समकित, बारह व्रत, बड़ी संलेखना (पालथी लगाकर), खड़े-खड़े अठारह पापस्थान, इच्छामि ठामि, तस्स धम्मस्स, इच्छामि खमासमणो दो बार।

(स) पाँच पदों की वन्दना- नवकार मंत्र, पाँचों पद, अनन्त चौबीसी, आयरिय उवज्झाए, अढ़ाई द्वीप, चौरासी लाख जीवयोनि, क्षमापना पाठ, अठारह पाप स्थान।

7. पाँचवें आवश्यक की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

देवसिय पायच्छित्त का पाठ, नवकार मंत्र, करेमि भंते, इच्छामि ठामि, तस्सउत्तरी, लोगस्स का काउस्सग्ग- (सामान्य दिनों में 4, पक्खी को 8, चौमासी को 12 तथा संवत्सरी को 20 लोगस्स का काउस्सग्ग करें) काउस्सग्ग शुद्धि का पाठ एवं एक लोगस्स प्रकट में। इच्छामि खमासमणो दो बार।

8. छठे आवश्यक की आज्ञा (तिक्खुत्तो का पाठ 3 बार)

समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ, प्रतिक्रमण का अन्तिम पाठ, नमोत्थुणं दो बार, सामूहिक वन्दना। सभी स्वधर्मी भाइयों को खमायें। फिर चौबीसी, भजन आदि बोलें।

तत्त्व विभाग-

कर्म प्रकृति का थोकड़ा

(उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-33 में आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ, आठ कर्मों की जघन्य-उत्कृष्ठ स्थितियाँ, भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 9 में कर्मों के प्रकृति-बंध के 85 कारण और पन्नवणा सूत्र पद 23 उद्दे. 1 में कर्मभोग के 93 कारण बताये हैं।)

कर्म- कषाय और योग के निमित्त से आत्मा के साथ लगे हुए दूध पानी की तरह एकमेक हुए कार्मण पुद्गलों को 'कर्म' कहते हैं।

कर्मों के नाम- 1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. वेदनीय 4. मोहनीय 5. आयु 6. नाम 7. गोत्र और 8. अन्तराय कर्म।

लक्षण :

1. वस्तु के विशेष धर्म को जानना 'ज्ञान' कहलाता है और जिसके द्वारा यह ज्ञान गुण आच्छादित होता है, उसे 'ज्ञानावरणीय' कर्म कहते हैं, जैसे- सूर्य के आगे बादल आ जाने से उसका प्रकाश ढक जाता है। इस कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान गुण प्रकट होता है।
2. वस्तु के सामान्य धर्म को जानना दर्शन कहलाता है और जिसके द्वारा यह दर्शन गुण आच्छादित होता है, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं। जैसे द्वारपाल की रुकावट के कारण राजा के दर्शन नहीं हो पाते। इस कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान गुण प्रकट होता है।
3. जिससे जीव साता व असाता का अनुभव करता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। जैसे शहद लगी हुई तलवार को चाटने से जीव को पहले सुख व बाद में जीभ कटने पर दुःख का अनुभव होता है। यह आत्मा के निराबाध गुण को आवरित (ढकना) करता है।
4. जिससे आत्मा मोहित (सत् और असत् के ज्ञान से हीन) हो जाये, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। जैसे- शराब पीने से मनुष्य अपना भान भूल जाता है। यह कर्म आत्मा के क्षायिक समकित तथा अनन्त वीतरागता गुण की घात करता है।
5. जिसके उदय से जीव चारों गतियों में अमुक काल के लिए रुका रहे, उसे आयु कर्म कहते हैं। जैसे- जेल में कैदी न चाहते हुए भी रुक जाता है। यह कर्म आत्मा के अटल अवगाहना अथवा अमरत्व गुण को आवरित (ढकना) करता है।
6. जिसके प्रभाव से जीव गति आदि विविध पर्यायों का अनुभव करें या जिसके सद्भाव से आत्मा का निज गुण अमूर्तत्व (अरूपीपना) प्रकट नहीं होवे, उसे नाम कर्म कहते हैं। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नाम कर्म के प्रभाव से जीव अनेक तरह के रूप धारण करता है।
7. जिसके प्रभाव से जीव ऊँच-नीच कुलों में उत्पन्न होता है या उच्चता-नीचता के संस्कार प्राप्त होते हैं, जो जीव के अगुरुलघु गुण की घात करता है, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। जैसे- कुम्भकार छोटे-बड़े बर्तन बनाता है, वैसे ही आत्मा कभी उच्च कुल में व कभी नीच कुल में जन्म लेती है।
8. जिससे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (शक्ति) में बाधा उत्पन्न होवे, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। जैसे- राजा की आज्ञा होने पर भी भण्डारी धन-प्राप्ति में बाधक हो जाता है। यह कर्म आत्मा के अनन्त वीर्य अथवा अनन्त आत्म-सामर्थ्य नामक गुण की घात करता है।

कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ :

आठ कर्मों की 148 उत्तर प्रकृतियाँ हैं। यथा- ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28, आयु की 4, नाम की 93, गोत्र की 2 और अन्तराय कर्म की 5 प्रकृतियाँ हैं।

प्रकृतियों के नाम :

(1) **ज्ञानावरणीय की पाँच प्रकृतियाँ**- 1. मतिज्ञानावरणीय, 2. श्रुतज्ञानावरणीय, 3. अवधिज्ञानावरणीय, 4. मनः पर्यायज्ञानावरणीय और 5. केवलज्ञानावरणीय।

(2) **दर्शनावरणीय की नौ प्रकृतियाँ**- 1. निद्रा, 2. निद्रा-निद्रा, 3. प्रचला, 4. प्रचला-प्रचला, 5. स्त्यानगृद्धि (स्त्यानर्द्धि), 6. चक्षुदर्शनावरणीय, 7. अचक्षुदर्शनावरणीय, 8. अवधिदर्शनावरणीय और 9. केवलदर्शनावरणीय।

(3) **वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ**- 1. साता और 2. असाता वेदनीय।

(4) **मोहनीय कर्म की 28 प्रकृतियाँ**- मुख्य दो भेद 1. दर्शन मोहनीय और 2. चारित्र मोहनीय।

दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ- 1. मिथ्यात्व मोहनीय 2. मिश्र मोहनीय और 3. सम्यक्त्व मोहनीय।

चारित्र मोहनीय के भी दो भेद- कषाय मोहनीय और नो कषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद हैं- अनन्तानुबन्धी- 1. क्रोध (पर्वत की दरार के समान), 2. मान (वज्र का स्तंभ), 3. माया (बांस की जड़-गाँठ की वक्रता), 4. लोभ (किरमिची रंग), 5. अप्रत्याख्यानी क्रोध (सूखे तालाब की दरार), 6. मान (अस्थि-हड्डियों का स्तंभ), 7. माया (मेंढे का सींग), 8. लोभ (खंजन-गाड़ी के पहिये का कीट), 9. प्रत्याख्यानावरण क्रोध (बालू रेत में खींची गई लकीर), 10. मान (काष्ट का स्तंभ), 11. माया (चलते बैल के मूत्र की लकीर), 12. लोभ (काजल की टीकी), 13. संज्वलन क्रोध (पानी में खींची गई लकीर), 14. मान (बेंत का स्तंभ), 15. माया (बांस के छिलकों के समान), 16. लोभ (हल्दी-फिटकरी के रंग के समान)।

अनन्तानुबन्धी कषाय में मरने वाला जीव नरक गति में जाता है, इस कषाय की स्थिति जीवन पर्यन्त (जब तक मिथ्यात्व नहीं छूटे) है। यह सम्यक्त्व नहीं आने देती।

अप्रत्याख्यानी कषाय में मरने वाला जीव तिर्यञ्च गति पाता है। इस कषाय की स्थिति एक वर्ष की है, यह श्रावक के व्रत, देशविरति नहीं आने देती।

प्रत्याख्यानावरण कषाय में मरने वाला जीव मनुष्य गति प्राप्त करता है। इस कषाय की स्थिति चार माह की है। यह सर्व विरति सयंम नहीं आने देती।

संज्वलन कषाय में मरने वाला जीव देवगति में जाता है। इसमें संज्वलन क्रोध की स्थिति 2 माह की, संज्वलन मान की 1 माह की, संज्वलन माया की 15 दिन की तथा संज्वलन लोभ की अन्तर्मुहूर्त की है। यह कषाय केवलज्ञान तथा यथाख्यात चारित्र नहीं होने देती।*

---

* उपर्युक्त अनन्तानुबन्धी आदि कषायों की गति व स्थिति का विवेचन व्यवहार नय की अपेक्षा से है, यह सामान्य लक्षण रूप है क्योंकि पहले गुणस्थान वाले में अनन्तानुबन्धी चौक का बन्ध व उदय रहते हुए भी प्रथम गुणस्थान वाला सिर्फ नरक में ही न जाकर चारों गतियों में जाता है। इसी प्रकार स्थिति का विवेचन भी उस समय के भावों के तारतम्य को प्रकट करने की अपेक्षा से है। वास्तव में किसी भी कषाय का उपयोग अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं रहता है तथापि यहाँ पर उक्त काल तक उन-उन कषायों की स्थिति का जो वर्णन किया गया वह प्रतिशोध की भावना से अवस्थित शल्य, वासना या संस्कार की अपेक्षा से किया गया जानना चाहिये (कषाय पाहुड पृ.610).

संज्वलन क्रोधादि कषायों की जो स्थिति बतलायी है वह उनके जघन्य स्थिति बन्ध की अपेक्षा से समझनी चाहिए। ये स्थितियाँ क्षपक श्रेणि में 9वें गुणस्थान में अपने-अपने बन्ध-विच्छेद के समय बन्धती है।

नोकषाय मोहनीय के नव भेद-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद।

(5) आयुकर्म की चार प्रकृतियाँ- 1. नरकायु 2. तिर्यञ्चायु 3. मनुष्यायु और 4. देवायु।

(6) नाम कर्म की 93 अथवा 103 प्रकृतियाँ-

1. **गति 4-** नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगति।
2. **जाति 5-** एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय।
3. **शरीर 5-** औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर।
4. **बन्धन 5-** औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण बन्धन।
5. **संघातन 5-** औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण संघातन।
6. **अंगोपांग 3-** औदारिक, वैक्रिय और आहारक अंगोपांग।
7. **संस्थान 6-** समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, कुब्ज और हुण्डक संस्थान।
8. **संहनन 6-** वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक और सेवार्त्त संहनन।
9. **वर्ण 5-** काला, नीला, लाल, पीला और सफेद।
10. **गन्ध 2-** सुगन्ध और दुर्गन्ध।
11. **रस 5-** तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा और मीठा।
12. **स्पर्श 8-** ठण्डा, गर्म, रूक्ष (लूखा), स्निग्ध (चिकना), खुरदरा, कोमल, हल्का और भारी।
13. **आनुपूर्वी 4-** नरकानुपूर्वी, तिर्यञ्चानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी और देवानुपूर्वी।
14. **विहायोगति 2-** शुभ और अशुभ विहायोगति।

प्रत्येक प्रकृति 8- उपघात, पराघात, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, उच्छ्वास, निर्माण और तीर्थंकर नाम।

त्रस 10- त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशःकीर्ति नाम।

स्थावर 10- स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और अयशःकीर्ति नाम।

उपर्युक्त 93 प्रकृतियों में बन्धन की 10 निम्न प्रकृतियाँ जोड़ने से नाम कर्म की कुल 103 प्रकृतियाँ होती हैं- 1. औदारिक तैजस बन्धन 2. औदारिक कार्मण बन्धन 3. औदारिक तैजस-कार्मण बन्धन 4. वैक्रिय तैजस

बन्धन 5. वैक्रिय कार्मण बन्धन 6. वैक्रिय तैजस-कार्मण बन्धन 7. आहारक तैजस बन्धन 8. आहारक कार्मण बन्धन 9. आहारक तैजस-कार्मण बन्धन 10. तैजस-कार्मण बन्धन।★

(7) **गोत्र कर्म की दो प्रकृतियाँ-** 1. उच्च और 2. नीच गोत्र।

(8) **अन्तराय कर्म की पाँच प्रकृतियाँ-** 1. दानान्तराय 2. लाभान्तराय 3. भोगान्तराय 4. उपभोगान्तराय और 5. वीर्यान्तराय।

बन्ध के प्रकार- 1. प्रकृति बन्ध 2. स्थिति बन्ध 3. अनुभाग बन्ध और 4. प्रदेश बन्ध

1. **प्रकृति बन्ध-** जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों में भिन्न-भिन्न स्वभावों का होना।
2. **स्थिति बन्ध-** जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों में अमुक काल तक जीव के साथ लगे रहने की कालमर्यादा।
3. **अनुभाग बन्ध-** जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलों में फल देने की न्यूनाधिक शक्ति।
4. **प्रदेश बन्ध-** जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म स्कन्धों का सम्बन्ध होना।

बन्ध और उदय :

1. ज्ञानावरणीय कर्म जीव छह प्रकार से बांधता है और दस प्रकार से भोगता है।

बन्ध के कारण-

1. ज्ञान और ज्ञानी का अवर्णवाद करे अथवा अवगुण निकाले।
2. ज्ञान और ज्ञानी की निन्दा करे व उनका उपकार न माने।
3. ज्ञान सीखने में अन्तराय देवे।
4. ज्ञान और ज्ञानी की आशातना करे।
5. ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करे।
6. ज्ञान व ज्ञानी से झूठा विषमवाद (झगड़ा) करे।

उदय दस प्रकार से- पाँच इन्द्रियों का आवरण तथा उन पाँच इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान का आवरण।★

2. दर्शनावरणीय कर्म भी जीव छह प्रकार से बांधता है, जो ज्ञानावरणीय के समान है। ज्ञान व ज्ञानी के स्थान पर दर्शन व दर्शनी शब्द बोलें।

★ बन्धन के दस भेद कर्मग्रंथ भाग-1 की गाथा-37 के आधार पर दिये गये हैं।

★ पाँचों इन्द्रियों के आवरण से तात्पर्य भावेन्द्रिय की अपेक्षा- क्षयोपशम (लब्धि) में कमी होना लिया है, जबकि इन्द्रियों से होने वाले ज्ञान के आवरण से तात्पर्य- भावेन्द्रिय की अपेक्षा- उपयोग में कमी होना लिया है। {प्रज्ञापना सूत्र पद-23 उद्दे.1 का विवेचन}

इसका उदय (फल) नौ प्रकार से जीव प्राप्त करता है- 1. चक्षुदर्शनावरणीय 2. अचक्षुदर्शनावरणीय 3. अवधि-दर्शनावरणीय 4. केवलदर्शनावरणीय 5. निद्रा 6. निद्रा-निद्रा 7. प्रचला 8. प्रचला-प्रचला और 9. स्त्यानगृद्धि।

3. वेदनीय- साता वेदनीय कर्म जीव दस प्रकार से बांधता है-

1. प्राण (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय) पर अनुकम्पा करने से।
2. भूत (वनस्पति) पर अनुकम्पा करने से।
3. जीव (पंचेन्द्रिय) पर अनुकम्पा करने से।
4. सत्त्व (पृथ्वी, अप् तेउ और वायुकाय के जीव) पर अनुकम्पा करने से।
5. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को दुःख नहीं देने से।
6. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को शोक नहीं कराने से।
7. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं रूलाने से।
8. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं झुराने से।
9. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं मारने से।
10. उपर्युक्त चारों ही प्रकार के बहुत जीवों को नहीं परितापना उपजाने से।

साता वेदनीय कर्म आठ प्रकार से भोगा जाता है- 1. मनोज्ञ शब्द 2. मनोज्ञ रूप 3. मनोज्ञ गन्ध 4. मनोज्ञ रस 5. मनोज्ञ स्पर्श 6. मन चाहे सुख 7. अच्छे वचन और 8. निरोगी काया।

असाता वेदनीय कर्म 12 प्रकार से बन्धता है- 1. प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को दुःख देने से, 2. बहुत जीवों को दुःख देने से, 3. शोक कराने से, 4. बहुत जीवों को शोक कराने से, 5. रूलाने से, 6. बहुत जीवों को रूलाने से, 7. झुराने से, 8. बहुत जीवों को झुराने से 9. मार-पीट करने से, 10. बहुत जीवों को मार-पीट करने से, 11. परिताप उपजाने से और 12. बहुत जीवों को परिताप उपजाने से।

आठ प्रकार से उदय- 1. अमनोज्ञ शब्द 2. अमनोज्ञ रूप 3. अमनोज्ञ गन्ध 4. अमनोज्ञ रस, 5. अमनोज्ञ स्पर्श 6. मन का दुःख, 7. वचन का दुःख और 8. काया का दुःख।

4. मोहनीय कर्म- छह प्रकार से बंधता है- 1. तीव्र क्रोध करने से, 2. तीव्र मान करने से, 3. तीव्र माया करने से, 4. तीव्र लोभ करने से, 5. तीव्र दर्शन मोहनीय से और 6. तीव्र चारित्र मोहनीय से।

उदय-मोहनीय कर्म की पूर्व कथित 28 प्रकृतियों के रूप में 28 प्रकार से उदय में आता है।★

★ प्रज्ञापना में उपर्युक्त 28 प्रकारों का संक्षेपीकरण करके 5 प्रकार से भोगना बताया है- सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्व वेदनीय, मिश्र वेदनीय, कषाय वेदनीय, नोकषाय वेदनीय। सभी प्रकृतियों का जो 93 प्रकार से भोगना बताया है, वह मोहनीय कर्म के 5 प्रकार से भोगने की अपेक्षा से है।

5. आयुष्य कर्म- इसमें प्रत्येक गति के आयुष्य बन्ध के चार-चार कारण हैं। जो जीव जिस गति का आयुष्य बन्ध करता है, वह उसी को भोगता है।

1. नरकायु के कारण- 1. महा आरम्भ करने से 2. महा परिग्रह करने से 3. मद्य-मांस का सेवन करने से और 4. पंचेन्द्रिय जीवों की घात करने से।
2. तिर्यंचायु के कारण- 1. माया करने से 2. गूढ़ माया (विश्वासघात) करने से 3. असत्य वचन बोलने से और 4. न्यूनाधिक माप-तौल करने से।
3. मनुष्यायु के कारण- 1. प्रकृति से सरल 2. प्रकृति से विनीत 3. दयावन्त और 4. मत्सर (ईर्ष्या) भाव से रहित।
4. देवायु के कारण- 1. सराग संयम (साधु धर्म) 2. संयमासंयम (श्रावक धर्म) 3. अज्ञान तप (बाल तप) और 4. अकाम निर्जरा (मिथ्यात्व के रहते हुए होने वाली निर्जरा)।

6. नाम कर्म- शुभ नाम कर्म 4 कारणों से बंधता है- 1. मन की सरलता, 2. वचन की सरलता, 3. काया की सरलता और 4. विसंवाद रहितता।

उदय 14 प्रकार से होता है- 1. इष्ट शब्द 2. इष्ट रूप 3. इष्ट गन्ध 4. इष्ट रस 5. इष्ट स्पर्श 6. इष्ट गति 7. इष्ट स्थिति 8. इष्ट लावण्य 9. इष्ट यशोकीर्ति 10. इष्ट उत्थान-कर्म-बल-वीर्य पुरूषाकार पराक्रम 11. इष्ट स्वर 12. कान्त स्वर 13. प्रिय स्वर और 14. मनोज्ञ स्वर।

अशुभ नाम कर्म 4 कारणों से बंधता है- 1. मन की वक्रता 2. वचन की वक्रता 3. काया की वक्रता और 4. विसंवाद (कलह) योग सहितता।

उदय 14 प्रकार से होता है- 1. अनिष्ट शब्द 2. अनिष्ट रूप 3. अनिष्ट गन्ध 4. अनिष्ट रस 5. अनिष्ट स्पर्श 6. अनिष्ट गति 7. अनिष्ट स्थिति 8. अनिष्ट लावण्य 9. अनिष्ट यशोकीर्त्ति 10. अनिष्ट उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरूषाकार पराक्रम 11. हीन स्वर 12. दीन स्वर 13. अप्रिय स्वर और 14. अमनोज्ञ स्वर।

7. गोत्र कर्म- गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बंधता है और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं- 1. उच्च गोत्र 2. नीच गोत्र। उच्च गोत्र आठ प्रकार से बंधता है- 1. जाति (मातृपक्ष) 2. कुल (पितृपक्ष) 3. बल 4. रूप 5. तप 6. श्रुत 7. लाभ और 8. ऐश्वर्य मद नहीं करने से।

भोग (उदय)- उपर्युक्त आठों प्रकार का मद नहीं करने से आठों ही प्रकार का उच्च गोत्र प्राप्त होता है।

नीच गोत्र- उपर्युक्त आठों प्रकार का मद करने से आठों प्रकार का नीच गोत्र प्राप्त होता है।

8. अन्तराय कर्म- यह पाँच प्रकार से बंधता है और पाँच प्रकार से भोगा जाता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अन्तराय (बाधा) डालने से बन्धता है और इससे पाँचों ही अन्तरायों की प्राप्ति होती है।

कर्मों की स्थिति और अबाधा काल★

	कर्म का नाम	जघन्य	उत्कृष्ट स्थिति	उत्कृष्ट अबाधाकाल
1.	ज्ञानावरणीय	अन्तर्मुहूर्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
2.	दर्शनावरणीय	अन्तर्मुहूर्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
3.	अन्तराय	अन्तर्मुहूर्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
4.	वेदनीय★	12 मुहूर्त	30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	3 हजार वर्ष
5.	मोहनीय	अन्तर्मुहूर्त	70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	7 हजार वर्ष
6.	नाम	आठमुहूर्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	2 हजार वर्ष
7.	गोत्र	आठमुहूर्त	20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम	2 हजार वर्ष
8.	आयु	अन्तर्मुहूर्त	33 सागरोपम	अबाधा काल नहीं★

आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का जघन्य अबाधाकाल 'अन्तर्मुहूर्त' होता है। उपर्युक्त अष्ट कर्मों का छेदन-भेदन करके जीव अजर-अमर (मोक्ष) शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

★ कर्मबन्ध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कर्म का उदय या उदीरणाकरण नहीं होता, तब तक का काल 'अबाधा काल' कहलाता है।

★ (अ) साता वेदनीय की जघन्य स्थिति ईर्यापथिकी क्रिया की अपेक्षा 2 समय की, सम्पराय की अपेक्षा 12 मुहूर्त की, उत्कृष्ट 15 कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। अबाधाकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 1500 वर्ष का है। (ब) असाता वेदनीय की जघन्य स्थिति एक सागर के सात भागों में से तीन भाग, उसमें पल्योपम के असंख्यात भाग कम की, उत्कृष्ट तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। इसका अबाधा काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष का है।

★ आयु कर्म में सात कर्मों के अबाधा काल सम्बन्धी नियम लागू नहीं हो पाने के कारण अबाधा काल नहीं माना गया है। किन्तु आयु कर्म बन्धने के बाद जब तक उसका प्रदेशोदय/विपाकोदय, इन दोनों में से कोई भी उदय नहीं हो, तब तक के काल को अर्थात् आयु बन्ध से लेकर मरण तक के काल को अबाधा काल माना जाता है।

उपयोग का थोकड़ा

श्री भगवती सूत्र के 13वें शतक के पहले-दूसरे उद्देशक में उपयोग का थोकड़ा इस प्रकार है-

उपयोग के 12 भेद इस प्रकार हैं :-

1. मतिज्ञानोपयोग	2. श्रुतज्ञानोपयोग
3. अवधिज्ञानोपयोग	4. मनः पर्यायज्ञानोपयोग
5. केवलज्ञानोपयोग	6. मति अज्ञानोपयोग
7. श्रुत अज्ञानोपयोग	8. विभंग ज्ञानोपयोग
9. चक्षुदर्शनोपयोग	10. अचक्षुदर्शनोपयोग
11. अवधिदर्शनोपयोग	12. केवलदर्शनोपयोग।

1. पहली, दूसरी और तीसरी नारकी में जीव 8 उपयोग लेकर जाते हैं- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि दर्शन)। सात उपयोग लेकर निकलते हैं- 3 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु व अवधि दर्शन) = 87.
2. चौथी, पाँचवी और छठी नारकी में 8 उपयोग लेकर जाते हैं। पूर्ववत् और 5 उपयोग लेकर निकलते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन = 85.
3. सातवीं नारकी में 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 3 अज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु और अवधि दर्शन), 3 उपयोग लेकर निकलते हैं- (2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन) = 53.
4. भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी में 8 उपयोग लेकर जाते हैं, पहली नारकीवत् और 5 उपयोग लेकर निकलते हैं (चौथी नरकवत्) = 85.
5. पहले देवलोक से नव ग्रैवयक तक में 8 उपयोग लेकर जाते हैं, पहली नारकीवत् और 7 उपयोग लेकर निकलते हैं- पहली नारकीवत् = 87.
6. पाँच अनुत्तर विमान में 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 3 ज्ञान, 2 दर्शन (अचक्षु और अवधि दर्शन) और 5 उपयोग ही लेकर निकलते हैं = 55.
7. पाँच स्थावर में 3 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन और ये 3 ही उपयोग लेकर निकलते हैं = 33.
8. तीन विकलेन्द्रिय में 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन, 3 उपयोग लेकर निकलते हैं- 2 अज्ञान, 1 अचक्षु दर्शन = 53.
9. तिर्यंच पंचेन्द्रिय में 5 उपयोग लेकर जाते हैं- 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 1 अचक्षुदर्शन। 8 उपयोग निकलते हैं- पहली नारकी में उत्पत्तिवत् = 58.

10. मनुष्य में 7 उपयोग लेकर जाते हैं (3 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन, अचक्षु व अवधि दर्शन) 8 उपयोग लेकर निकलते हैं, पहली नारकी में उत्पत्तिवत् = 78.

नोट- उपर्युक्त 87 आदि संख्याओं में प्रथम अंक लेकर जाने का तथा दूसरा अंक लेकर निकलने का है। जैसे- 87 में 8 उपयोग लेकर जाते हैं तथा 7 उपयोग लेकर निकलते हैं। इस थोकड़े में उपयोगों की संख्या बाटा बहती अवस्था (एक गति-भव से मरकर दूसरे भव में जाने के बीच की अवस्था) की अपेक्षा से समझना चाहिए।

उपयोग द्वार का यह थोकड़ा बाटा बहती अवस्था (अपान्तरालगति) की अपेक्षा से समझना चाहिए। यही कारण है कि इसमें किसी भी जीव में मनःपर्याय ज्ञान, केवलज्ञान, चक्षुदर्शन तथा केवलदर्शन ये चार उपयोग नहीं बताये हैं। क्योंकि ये चारों उपयोग बाटा बहती अवस्था में नहीं मिलकर भव विशेष में स्थित होने पर ही मिलते हैं।

संज्ञा का थोकड़ा

(श्री पन्नवणा सूत्र पद आठ के आधार पर)

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से एवं वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में होने वाली आहारादि की इच्छा (अभिलाषा) को 'संज्ञा' कहते हैं।

संज्ञा दस प्रकार की हैं, यथा-

1. **आहार संज्ञा-** क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से ग्रासादि (कवलादि) रूप आहार को ग्रहण करने की अभिलाषा होना।
2. **भय संज्ञा-** भय मोहनीय कर्म के उदय से प्राणी के शरीर, नेत्र, मुख आदि में रोमांच, कम्पन्न, घबराहट आदि होना।
3. **मैथुन संज्ञा-** वेद मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन सम्बन्धी विषय-भोगों को भोगने की विकार भावना होना।
4. **परिग्रह संज्ञा-** लोभ मोहनीय कर्म के उदय से सचित्त-अचित्त और मिश्र पदार्थों को आसक्ति पूर्वक ग्रहण करने की अभिलाषा होना।
5. **क्रोध संज्ञा-** क्रोध मोहनीय कर्म के उदय से कोपवृत्ति (गुस्सा) के अनुरूप चेष्टा होना।
6. **मान संज्ञा-** मान मोहनीय कर्म के उदय से अहंकार, दर्प, गर्व आदि की चेष्टा होना।
7. **माया संज्ञा-** माया मोहनीय कर्म के उदय से छल-कपट आदि की चेष्टा होना।
8. **लोभ संज्ञा-** लोभ मोहनीय कर्म के उदय से पदार्थों को पाने की अभिलाषा होना।
9. **लोकसंज्ञा-** लोक में रूढ़ किन्तु अन्धविश्वास, हिंसा, असत्य आदि के कारण हेय होने पर भी लोकरूढ़ि का अनुसरण करने की अभिलाषा होना। अथवा मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थों को विशेष रूप से जानने की अभिलाषा होना।
10. **ओघसंज्ञा-** बिना उपयोग (बिना सोचे-विचारे) धुन ही धुन में किसी कार्य को करने की प्रवृत्ति होना। जैसे बिना प्रयोजन के ही किसी वृक्ष पर चढ़ जाना, बैठे-बैठे पैर हिलाना, तिनके तोड़ना आदि। अथवा मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से संसार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थों या लोकप्रचलित शब्दों के अनुरूप पदार्थों को सामान्य रूप से जानने की अभिलाषा होना।

समुच्चय जीव और 24 दण्डक के जीवों में ये दसों ही संज्ञाएँ पायी जाती हैं।

आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा पैदा होने के चार-चार कारण इस प्रकार हैं-

1. **आहार संज्ञा-** 1. पेट के खाली होने से, 2. क्षुधा-वेदनीय कर्म के उदय से, 3. आहार का चिन्तन करने से और 4. आहार के दृश्य देखने से।
2. **भय संज्ञा-** 1. अधीरता से (धैर्य के अभाव से), 2. भय मोहनीय कर्म के उदय से, 3. भय का चिन्तन करने से और 4. भय के दृश्य देखने से।
3. **मैथुन संज्ञा-** 1. शरीर की पुष्टता से, 2. वेद मोहनीय कर्म के उदय से, 3. मैथुन सम्बन्धी बातें सुनने से और 4. भोग सम्बन्धी चिन्तन करने से।

4. **परिग्रह संज्ञा-** 1. अत्यन्त इच्छा-मूर्च्छा होने से, 2. लोभ मोहनीय कर्म के उदय से, 3. परिग्रह का चिन्तन करने से और 4. परिग्रह के दृश्य देखने से।

चारों गति की अपेक्षा से उपर्युक्त चारों संज्ञाओं की अल्पबहुत्व- नारकी में सबसे कम मैथुन संज्ञावाले, उससे अधिक आहार संज्ञा वाले संख्यात गुणा, उनसे परिग्रह संज्ञा वाले संख्यात गुणा और उनसे भय संज्ञा वाले संख्यात गुणा। (मै.आ.प.)

तिर्यंच गति में सबसे कम परिग्रह संज्ञा वाले, उनसे मैथुन संज्ञा वाले, भय संज्ञा वाले व आहार संज्ञा वाले क्रमशः संख्यात गुणा। (प.मै.भ.)

मनुष्य गति में सबसे कम भय संज्ञा वाले, उनसे आहार, परिग्रह और मैथुन संज्ञा वाले क्रमशः संख्यात गुणा। (भ.आ.प.)

देवगति में सबसे कम आहार संज्ञा वाले, उनसे भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा वाले क्रमशः संख्यात गुणा। (आ. भ.मै.)

चारों गति में उत्पन्न होने वाले जीवों में कौन-कौनसी संज्ञा अधिक पायी जाती है?

नारकी से आये हुए जीव में क्रोध और भय संज्ञा अधिक पायी जाती है। तिर्यंचगति से आये हुए जीव में माया और आहार संज्ञा अधिक पायी जाती है। मनुष्य गति से आये हुए जीव में मान और मैथुन संज्ञा अधिक पायी जाती है। देव गति से आये हुए जीव में लोभ और परिग्रह संज्ञा अधिक पायी जाती है।

दस संज्ञा को उत्पन्न करने वाले कर्म- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से लोक और ओघ संज्ञा, वेदनीय कर्म के उदय से आहार संज्ञा और शेष सात संज्ञाएँ मोहनीय कर्म के उदय से होती हैं।

चौदह - नियम

सचित्त दव्व विगअ, पन्नी तंबोल वत्थ कुसुमेसु ।
वाहण सयण विलेवण, बम्भ दिसि न्हाण भत्तेसु ।।

1. **सचित्त-** जीव सहित वस्तु अर्थात् कच्चा पानी, फल, फूल, मूल, बीज आदि। कोई भी सचित्त वस्तु, जो छेदन-भेदन होकर तथा अग्नि आदि का शस्त्र पाकर अचित्त न हुई हो।
2. **द्रव्य-** रोटी, दाल, भात आदि द्रव्य।
3. **विगय-** दूध, दही, घी, तेल, मीठा आदि।
4. **उपानत्-** जूते, चप्पल आदि।
5. **ताम्बूल-** मुखवास, पान, सुपारी आदि।
6. **वस्त्र-** पहनने-ओढ़ने के सब वस्त्र।
7. **कुसुम-** सूँघने की वस्तु- फूल, इत्र, सेण्ट आदि।
8. **वाहन-** घोड़ा, हाथी, जहाज, व्हील चेयर, साइकिल, मोटर आदि।
9. **शयन-** पलंग, खाट, बिछौनें आदि।
10. **विलेपन-** चन्दन, तेल, उबटन आदि।
11. **ब्रह्मचर्य-** मैथुन का त्याग।
12. **दिशा-** ऊँची, नीची, तिरछी दिशा।
13. **स्नान-** स्नान का जल।
14. **भक्त-** मिष्ठान्न आदि भोजन।

चौदह नियम नित्यप्रति प्रातःकाल सामायिक पारने के तुरन्त पश्चात् ग्रहण करें। ऊपर लिखित चौदह वस्तुओं की, आवश्यकता के अनुसार, जितनी मर्यादा (परिमाण) रखनी हो, रखकर उसके उपरान्त का त्याग कर लेना चाहिये। जितना त्याग, उतनी ही शान्ति। चौदह नियम नियमित रूप से प्रतिदिन ग्रहण करने से समुद्र जितना पाप घट कर बूँद के बराबर रह जाता है।

श्रावक के तीन मनोरथ

श्रावक श्राविकाओं के लिये आवश्यक है कि प्रतिदिन प्रातःकाल सामायिक करते समय इनके द्वारा संकल्पबल को बढ़ाते हुए जीवन को उन्नत करें। स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान में भगवान् महावीर ने इनका वर्णन किया है-

1. वह दिवस मेरा धन्य होगा जब मैं अपने नौ प्रकार के बाह्य परिग्रह (खेत्त-वत्थु आदि) और चौदह प्रकार के आभ्यन्तर परिग्रह (4 कषाय, 9 नोकषाय व मिथ्यात्व), जो आत्मा के लिये सबसे बड़े बंधन हैं, उनको त्याग कर प्रमोदभाव का अनुभव करूँगा। ममता के भार से मन को हल्का करूँगा। वह दिन मेरे लिये परम कल्याणकारी व मंगलकारी होगा।
2. वह दिवस धन्य होगा जब मैं संसार की मोह-माया और विषय-वासना का त्याग करके साधु जीवन स्वीकार करूँगा। अहिंसादि पाँच महाव्रतों को धारण कर, परीषह-उपसर्गों को समभाव से सहन कर जिस दिन द्रव्य व भाव से मुनि पद की ऊँची भूमिका में विचरण करूँगा, वह दिवस मेरे लिये परम मंगलकारी होगा।
3. वह दिवस मेरे लिये धन्य होगा जब मैं अपनी संयम यात्रा को सकुशल निर्विघ्न भाव से पूर्ण कर अंत समय में आलोचना, निंदना एवं गर्हणा करके संथारा ग्रहण करूँगा। सब प्रकार की उपधि, आहार और जीवन की ममता का भी त्याग कर जिस दिन पूर्ण रूप से अपने आपको पंडित मरण में लगाऊँगा, वह दिन मेरे लिये उत्कृष्ट कल्याणकारी होगा।

कथा/जीवनी विभाग-

भगवान श्री शान्तिनाथजी

सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान का जीवन बड़ा प्रभावशाली और लोकोपकारी था। इन्होंने राजा मेघरथ के भव में कबूतर की रक्षा कर उत्कृष्ट अहिंसा, दया, उदारता एवं प्राणि - वत्सलता का महान् आदर्श उपस्थित कर तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया, जिसका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है -

पुण्डरीकिणी नामक नगरी में महाराज धनरथ राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम प्रियमती था। रानी प्रियमती की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम मेघरथ रखा गया रखा गया। मेघरथ महान पराक्रमी होकर भी बडे दयालु और साहसी थे।

मेघरथ के पिता महाराज धनरथ ने मेघरथ को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। मेघरथ राजा बन गया, फिर भी धर्म को नहीं भूला। एक दिन व्रत ग्रहण कर वह पौषधशाला में बैठा था कि एक कबूतर आकर उसकी गोद में गिर गया और भय से कंपित हो अभय की याचना करने लगा। राजा ने स्नेहपूर्वक उसकी पीठ पर हाथ फेरा और उसे निर्भय रहने को आश्वस्त किया।

इतने में ही वहाँ एक बाज आया और राजा से कबूतर की मांग करने लगा। राजा ने शरणागत को लौटाने में अपनी असमर्थता प्रकट की तथा बाज से कहा - ''खाने के लिए तू दूसरी वस्तु से भी अपना पेट भर सकता है, फिर इसको मार कर क्या पायेगा ? इसको भी प्राण अपने समान ही प्रिय हैं।''

इस पर बाज ने कहा - ''महाराज ! एक को मार कर दूसरे को बचाना, यह कहाँ का न्याय व धर्म है ? कबूतर के ताजा मांस के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता, आप धर्मात्मा हैं तो दोनों को बचाइए।''

यह सुनकर मेघरथ ने कहा - ''यदि ऐसा ही है तो मैं अपना ताजा मांस तुम्हें देता हूँ, लो इसे खाओ और असहाय कबूतर को छोड़ दो।''

बाज ने राजा की बात मान ली। तराजू मंगाकर राजा ने एक पलड़े में कबूतर को रखा और दूसरे में अपने शरीर का मांस काट-काट कर रखने लगे। राजा के इस अद्‌भुत साहस को देख कर पुरजन और अधिकारी वर्ग स्तब्ध रह गये, राज परिवार में शोक का वातावरण छा गया। शरीर का एक-एक अंग चढ़ाने पर भी जब उसका भार कबूतर के भार के बराबर नहीं हुआ तो राजा स्वयं सहर्ष तराजू पर बैठ गया।

बाज रूप में देव, राजा की इस अविचल श्रद्धा और अपूर्व त्याग को देख कर मुग्ध हो गया और दिव्यरूप से उपस्थित होकर मेघरथ के करूणाभाव की प्रशंसा करते हुए बोला- ''धन्य है महाराज मेघरथ को! मैंने इन्द्र की बात पर विश्वास न करके आपको जो कष्ट दिया, एतदर्थ क्षमा चाहता हूँ। आपकी श्रद्धा सचमुच अनुकरणीय है।'' यह कह कर देव चला गया।

कुछ समय बाद मेघरथ ने पौषधशाला में पुनः अष्टम तप (तेला) किया। उस समय राजा ने जीव - दया के उत्कृष्ट अध्यवसायों में महान् पुण्य - संचय किया।

ईशानेन्द्र ने स्वर्ग से नमन कर इनकी प्रशंसा की, किन्तु इन्द्राणियों को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने आकर मेघरथ को ध्यान से विचलित करने के लिए विविध परीषह दिये परन्तु राजा का ध्यान विचलित नहीं हुआ। सूर्योदय होते - होते इन्द्राणियाँ अपनी हार मानती हुई राजा मेघरथ को नमस्कार कर चली गईं।

अन्त-समय अनशन की आराधना कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए तथा वहाँ तेंतीस सागर की आयु प्राप्त की।

जन्म-

भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को मेघरथ का जीव सर्वार्थसिद्ध-विमान से च्यव कर हस्तिनापुर के महाराज विश्वसेन की महारानी अचिरा की कुक्षि में उत्पन्न हुआ। माता ने गर्भधारण कर उसी रात में मंगलकारी चौदह शुभ - स्वप्न भी देखे। उचित आहार - विहार से गर्भकाल पूर्ण कर ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को मध्यरात्रि के समय माता ने सुखपूर्वक स्वर्ण के समान वर्ण वाले पुत्र रत्न को जन्म दिया। इनके जन्म से सम्पूर्ण लोक में उद्योत हुआ और नारकीय जीवों को भी क्षण भर के लिए विराम मिला। महाराज ने अनुपम आमोद-प्रमोद के साथ जन्म-महोत्सव मनाया।

नामकरण-

शान्तिनाथ के जन्म से पूर्व हस्तिनापुर नगर एवं देश में कुछ काल से महामारी का रोग चल रहा था। प्रकृति के इस प्रकोप से लोग भयाक्रान्त थे। माता अचिरादेवी भी इस रोग के प्रसार से चिन्तित थीं। माता अचिरादेवी के गर्भ में प्रभु का आगमन होते ही महामारी का भयंकर प्रकोप शान्त हो गया, अतः नामकरण संस्कार के समय आपका नाम शान्तिनाथ रखा गया।

विवाह और राज्य-

द्वितीया के चन्द्रमा की तरह बढ़ते हुए कुमार शान्तिनाथ जब युवावस्था में आये तो पिता महाराज विश्वसेन ने अनेक राजकन्याओं के साथ आपका विवाह करा दिया और कुछ काल के बाद शान्तिनाथ को राज्य देकर स्वयं महाराज विश्वसेन ने मुनिव्रत स्वीकार कर लिया।

अब शान्तिनाथजी राजा हो गये। इसी बीच महारानी यशोमती से उनको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जो कि दृढ़रथ का जीव था। पुत्र का नाम चक्रायुध रखा गया। पच्चीस हजार वर्ष तक मांडलिक राजा के पद पर रहते हुए आयुधशाला में चक्ररत्न के उत्पन्न होने पर उसके प्रभाव से शान्तिनाथजी ने छहखण्ड पृथ्वी को जीत कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया और पच्चीस हजार वर्ष तक चक्रवर्ती-पद पर रहते हुए सम्पूर्ण भारतवर्ष का शासन किया। जब भोगावली-कर्म क्षीण हुए तो उन्होंने दीक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा की।

दीक्षा और पारणा–

लोकान्तिक देवों से प्रेरित होकर प्रभु ने वर्ष भर याचकों को इच्छानुसार दान दिया। तत्पश्चात् एक हजार राजाओं के साथ बेले की तपस्या से ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को भरणी नक्षत्र में दीक्षार्थ प्रस्थान किया। देव-मानव-वृन्द से घिरे हुए प्रभु सहस्त्राम्र वन में पहुँचे और वहाँ सिद्धों को वन्दन - नमस्कार करके सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर दीक्षा ग्रहण की।

दूसरे दिन मंदिरपुर में जाकर महाराज सुमित्र के यहाँ परमान्न (खीर) से आपने प्रथम पारणा किया। पंचदिव्य बरसा कर देवों ने दान की महिमा प्रकट की।

वहाँ से विहार कर वर्ष भर तक आप विविध प्रकार की तपस्या करते हुए छद्मस्थ रूप से विचरे।

केवलज्ञान–

एक वर्ष बाद फिर हस्तिनापुर से सहस्त्राम्र उद्यान में आकर आप ध्यान में स्थित हो गये। आपने शुक्लध्यान से क्षपक-श्रेणि को प्राप्त कर सम्पूर्ण घाति-कर्मों का क्षय किया और पौष शुक्ला नवमी को भरणी नक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति की।

केवली होकर प्रभु ने धर्म-देशना देते हुए समझाया- ''संसार के सारभूत षट्-द्रव्यों में आत्मा ही सर्वोच्च और प्रमुख है। जिस कार्य से आत्मा का उत्थान हो, वही उत्तम और श्रेयस्कर है। मानव-जन्म पाकर जिसने आत्म-कल्याण नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ एवं निष्फल है।''

धर्म-देशना सुन कर हजारों नर-नारियों ने संयम-धर्म स्वीकार किया। चतुर्विध-संघ की स्थापना कर प्रभु भाव-तीर्थंकर कहलाये।

धर्म–परिवार–

भगवान शान्तिनाथ का धर्म-परिवार निम्न था :-

गण एवं गणधर	-	36
साधु	-	62,000
साध्वी	-	61,600
श्रावक	-	2,90,000
श्राविका	-	3,93,000

परिनिर्वाण–

प्रभु ने एक वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष केवली - पर्याय में विचर कर लाखों लोगों को कल्याण का संदेश दिया। फिर अन्तकाल समीप जानकर उन्होंने नौ सौ साधुओं के साथ एक मास का अनशन किया और ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को भरणी नक्षत्र में चार अघाति-कर्मों का क्षय कर सम्मेत - शिखर पर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होकर निर्वाण-पद प्राप्त किया। आपकी पूर्ण आयु एक लाख वर्ष की थी।

शिक्षाएँ –

1. अहिंसा एवं परोपकार के कार्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
2. उदारता गुण को बढ़ाने हेतु एक-दूसरे का सहयोगी बनना चाहिए।
3. परीक्षा एवं प्रतिकूलता की घड़ियों में भी अपनी प्रतिज्ञा को दृढ़ता से पूर्ण करना चाहिए।
4. करूणाभाव को बढ़ाने हेतु यथाशक्ति क्रियात्मक सेवा को अपनाना चाहिए।

प्रार्थना विभाग-

मेरे अन्तर भया प्रकाश

मेरे अन्तर भया प्रकाश, नहीं अब मुझे किसी की आश ।।टेर।।

1. काल अनन्त रुला भव वन में, बंधा मोह के पाश,
काम क्रोध मद लोभ भाव से, बना जगत् का दास। मेरे...

2. तन धन परिजन सब ही पर हैं, पर की आश निराश,
पुद्गल को अपना कर मैंने, किया स्वत्व का नाश। मेरे...

3. रोग शोक नहीं मुझको देते, जरा मात्र भी त्रास,
सदा शान्तिमय मैं हूँ मेरा, अचल रूप है खास। मेरे...

4. इस जग की ममता ने मुझको, डाला गर्भावास,
अस्थि मांस मय अशुचि देह में, मेरा हुआ निवास। मेरे...

5. ममता से संताप उठाया, आज हुआ विश्वास,
भेद ज्ञान की पैनी धार से, काट दिया वह पाश। मेरे...

6. मोह मिथ्यात्व की गाँठ गले तब, होवे ज्ञान प्रकाश,
'गजेन्द्र' देखे अलख रूप को, फिर न किसी की आश। मेरे..

रचयिता- **आचार्य श्री हस्ती**

आओ भगवन आओ

आओ भगवन आओ, इस अन्तरमन में आओ।
मेरे जीवन के कण-कण में, बनकर प्राण समाओ।।
आओ भगवन.....

लिया तुम्हारा शरणा है, मोह निराकृत करना है,
इसने मुझको मारा है, तुमने इसे संहारा है।
तब ही जिन कहलाते हो, सबको राह बताते हो,
बनकर निर्देशक इस रण में, मुझको विजय दिलाओ।।
आओ भगवन.....

चारों ओर अन्धेरा है, एक सहारा तेरा है,
जीवन सूना-सूना है, पिछड़ा दूना-दूना है।

बुझा हुआ हूँ दीप प्रभु, आया आप समीप प्रभु,
तुम जलते दीपक हो मुझको, अपने तुल्य बनाओ।।
आओ भगवन.....

निज को इतना भूल गया, बिल्कुल ही बना धूल गया,
आसमान का तारा हूँ, इस धरती से न्यारा हूँ।
इस जग से विच्छेद मिले, तेरा मुझे अभेद मिले,
अपनी ऊँची श्रेणि में अब, मुझको भी बिठलाओ।।
आओ भगवन.....

बोधि बीज जो पाया है, तरू बनकर मुस्काया है,
सत्यज्ञान का हो सिंचन, झंझाओं से हो रक्षण।
फल आने की ऋतु आये, भव्य साधना बन जाये,
पत्रित पुष्पित और फलित वो, करूणा रस बरसाओ।।
आओ भगवन.....

सामान्य विभाग-

पच्चक्खाण सूत्र

1. नमोक्कारसहियं (नवकारसी)

उग्गए सूरे नमोक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, वोसिरामि।

2. अभत्तट्ठ सूत्र (उपवास)

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं पच्चक्खामि, तिविहं पि चउव्विहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तिया- गारेणं, वोसिरामि।

संवर

द्रव्य से- पाँच आस्रव (समस्त सावद्य योग) सेवन का पच्चक्खाण, क्षेत्र से- लोक प्रमाण, काल से- स्थिरता प्रमाण (जितने समय का करना हो उसे प्रकट कहें), भाव से- दो करण तीन योग से, नहीं पालूँ तब तक (करण योग इच्छानुसार बोले जा सकते हैं) उपयोगसहित तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

दया

द्रव्य से- पाँच आस्रव (समस्त सावद्ययोग) सेवन का पच्चक्खाण, क्षेत्र से- लोक प्रमाण, काल से- सूर्योदय तक, भाव से- दो करण तीन योग (करण और योग इच्छानुसार लगा सकते हैं) उपयोग सहित, तस्स भंते पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

नोट :- स्वयं पच्चक्खाण करना हो तो 'वोसिरामि' और दूसरों को कराना हो तो 'वोसिरे' बोलें।

सचित्त-अचित्त-विवेक

जो जीव सहित है, वह सचित्त है। इसके ठीक विपरीत जो जीव रहित है, वह अचित्त है।

अब हम एक-एक काय के सन्दर्भ में इसका चिन्तन करते हैं-

पृथ्वीकाय- सोना, चाँदी, रत्न, पत्थर, मिट्टी, नमक, हड़ताल, हिंगलू, मूरड़, माटी आदि पृथ्वीकाय के रूप में जाने जाते हैं। इनमें बाहर का ताप, पानी, लोगों के आवागमन आदि से ऊपर की परत के जीव समाप्त हो जाते हैं। ऊपर-ऊपर से वह पृथ्वी का अंश अचित्त हो जाता है। नीचे की ठोस भूमि को चार अंगुल तक अचित्त माना जाता है। तत्काल का टचा हुआ पत्थर पूर्ण अचित्त नहीं होने से सचित्त के त्यागी द्वारा उसका स्पर्श वर्जनीय होता है। नमक, चूना आदि अग्नि के तीखे शस्त्र से पूर्ण अचित्त हो सकते हैं। केवल बारीक पीसने मात्र से उनकी सचित्तता समाप्त नहीं होती है। अतः सचित्त के त्यागी को नीम्बू आदि शस्त्रों से पूर्ण अचित्त न बने हुए नमक का सेवन करना नहीं कल्पता है।

नींव आदि खुदवाना, पत्थर आदि को तोड़ना इन कार्यों में स्पष्टतः पृथ्वीकाय की विराधना होती है।

अप्काय- पूरी तरह गर्म हुआ, क्षार आदि के तीखे शस्त्र से पूरी तरह परिणत हुआ पानी जीव रहित (अचित्त) हो जाता है। जहाँ पत्थर में ऊपर की परत पर आवागमन, धूप आदि शस्त्रों का निरन्तर स्पर्श होने से पुनः पृथ्वीकाय के जीवों की उत्पत्ति नहीं होती। वहीं अप्काय में निश्चित समय के बाद शस्त्र नहीं लगने पर अप्काय के जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। वर्षा ऋतु में तीन प्रहर, सर्दी में चार प्रहर तथा गर्मी में 5 प्रहर की मर्यादा गर्म पानी के लिए अचित्त रहने की बतायी है। उसके उपरान्त वह पानी अचित्त नहीं रह पाता है।

धोवन बनाने के समय से पानी के अन्तर में राख जमी हुई हो और हिलाने से पूरे पानी में स्पर्श हो, तब भी पाँच प्रहर के उपरान्त तो उसे भी काम में नहीं लिया जा सकता। अणगार भगवन्त, इसीलिये दूसरे प्रहर में फरस (राखादि) को हिलवा कर पानी लाते हैं। लाने के पश्चात् कपड़े से छानते हैं। वह राख के शस्त्र से रहित धोवन पानी भी तीन प्रहर उपरान्त पीने के काम में नहीं आ सकता।

शीतलता व आर्द्रता में अचित्त पानी में जल्दी जीवोत्पत्ति की संभावना रहती है। अर्थात् वह सचित्त बन जाता है। फ्रीज में शीतलता, आर्द्रता अधिक मात्रा में रहती है, उसमें अचित्तपना अधिक समय तक कायम रहना संभव नहीं है, इसलिये विवेकी श्रावक धोवन या गर्म पानी को फ्रीज में नहीं रखते।

बर्फादि मिलाकर ठण्डा किया आमरस, ठण्डाई, दूध, गन्ने का रस, दही की लस्सी, ज्यूस आदि में बर्फ गलने से एक घड़ी (24 मिनट) पूर्व तक सचित्त की संभावना रहती है।

बरसात की बून्दे बंगले आदि के लोहे के दरवाजे पर लगी हों तो वे भी सचित्त कहलाती हैं। कूलर की हवा के साथ जो पानी की बून्दे आती हैं वे भी सचित्त हैं, अतः सचित्त के त्यागी सन्त-सतियों को इनके स्पर्श से बचना चाहिये।

तेउकाय- जलती हुई अग्नि, गैस के चूल्हे आदि तो प्रत्यक्ष सिद्ध हैं ही, बिजली की सचित्तता के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण हैं। सेल की धारा में भी वही विद्युत् कम मात्रा में लगभग 1.5 वोल्ट के रूप में रहती है, इसलिये चालू सेल, सेल्यूलर फोन, बैटरी, सेल की घड़ी आदि सचित्त मानी जाती हैं। हीटर आदि का प्लक जुड़ा हुआ रहने से, टेलीविजन का कनेक्शन बन्द, पर इनका तार-करण्ट से जुड़ा होने से, बटन दबाने पर धारा प्रवाहित हो जाती है। एक

तार की धारा का सम्बन्ध तो जुड़ा ही रहता है अतः इनका संघट्टा टालना ही उपयुक्त लगता है। टेलीफोन में तो करन्ट का सम्बन्ध अन्दर तक बना ही रहता है। रिसीवर उठाते ही टोन सुनाई देती है। नहीं उठाने पर भी सामने वाले व्यक्ति के द्वारा किये गये फोन के कारण घण्टी बज जाती है। अतः टेबिल पर पड़े हुए सचित्त नमक या हरी-लिलौती की तरह टेलीफोन को भी सचित्त मानकर साधु-साध्वी वहाँ रखी हुई अचित्त सामग्री को भी ग्रहण नहीं करते हैं।

वायुकाय- वायुकाय की विराधना से बचना अत्यन्त कठिन है। खुले मुँह बोलना, पल्ला हिलाना, ताली-चुटकी बजाना, तेज दौड़ना, फूँक मारना आदि से वायुकाय की अधिक विराधना होती है। साइकिल आदि वाहन की ट्यूब में भरी हुई वायु भरते समय मध्यम गति से 100 कदम चलने में जितना समय लगे तब तक अचित्त, अगले 100 कदम तक के समय में मिश्र तथा बाद में सचित्त हो जाती है। वायुकाय की विराधना, सचित्त, अचित्त या मिश्र वायु से ही हो सकती है। अतः ट्यूब या टायर के स्पर्श में विराधना की संभावना नहीं है।

पंखे आदि चलाने से उत्पन्न वायु यद्यपि अचित्त होती है, किन्तु वह सचित्त वायु के लिए शस्त्र का काम करती है तथा अन्तर्मुहूर्त बाद वह अचित्त वायु भी सचित्त हो जाती है। इस कारण से सामायिक आदि में पंखे आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए।

वनस्पतिकाय- पन्नवणा, जीवाभिगम आदि सूत्रों में वनस्पति के दस भेद- मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाला, पत्र, पुष्प, फल और बीज बतलाये हैं। उनमें फल और बीज को छोड़कर बाकी आठों ही पूरी तरह नहीं सूखने पर सचित्त होते हैं। इनको शस्त्र आदि से पूरी तरह पीस दिये जाने पर अथवा अग्नि पर पका दिये जाने पर इनकी सचित्तता समाप्त हो जाती है। उदाहरण के लिये- धनिये, पौदीने आदि की पत्तियाँ चटनी रूप में परिणित होने के कतिपय मिनटों बाद अचित्त मानी जाती हैं।

बीज (गेहूँ, मक्का, जौ, चना आदि व फल, सब्जी के बीज) सूखने पर भी सचित्त होते हैं।

फल- पका हुआ फल ऊपर के डण्ठल (बिण्ट) से रहित होने पर फल के जीव से रहित हो जाता है। किन्तु अन्दर में गुठली या बीज होने से दसवें भेद बीज वाला जीव सहित अर्थात् सचित्त कहलाता है। उस बीज से भी रहित होने पर वह फल अचित्त हो जाता है।

सूखे हुए मेवे भी अन्दर की गुठली या बीज से रहित होने पर अचित्त हो जाते हैं। छिलका रहित काजू सभी परम्पराओं में अचित्त ही माना जाता है। मुनक्का-दाख, खुरमाणी, पिण्डखजूर आदि गुठली रहित होने पर अचित्त होते हैं। अखरोट के छिलके के टूटने पर अन्दर से निकलने वाले दाने अचित्त होते हैं।

अग्नि, नमक आदि के शस्त्र से तथा दो टुकड़े होने पर बिदाम, पिस्ते आदि भी अचित्त माने जाते हैं। केला, अंगूर, किशमिश आदि पर महापुरुषों ने गहन चर्चा-चिन्तन-मनन किया है पर एकरूपता कायम नहीं हो सकी। फिलहाल एक-दो परम्पराओं को छोड़कर शेष परम्पराएँ इन्हें बीज रहित मानती हैं और बृहत्कल्प सूत्र आदि के प्रमाण से इन्हें अचित्त मानकर ग्रहण करने योग्य समझती हैं।

बहुबीजी फल अमरूद, टमाटर, अनार आदि से बीज का अंश पूर्णतः अलग होना प्रायः सम्भव नहीं है। अनार में तो सारा अंश प्रायः बीज का ही होता है। ये कच्चे, भले ही चाट में मिलाये गये हों, भले ही फ्रूट साल्ट में डाले गये हों, मसाले चीनी से युक्त हों, तब भी सचित्त ही हैं। अग्नि द्वारा पकने पर अथवा रस रूप में परिणत होने पर ये अचित्त माने जाते हैं।

खरबूजा, मौसमी, नारंगी, चीकू, पपीता बहुबीजी होने पर भी इनसे बीज सुगमता पूर्वक अलग हो जाते हैं। पूरी तरह पका हुआ बीज रहित फल अचित्त होता है। मतीरे, तरबूज में जब तक बीज रहता है तब तक सचित्त माना जाता है।

सिके हुए होले, धूँगारी हुई, बगारी हुई मोगरी, ककड़ी आदि अग्नि पर छोंकते ही नीचे उतार ली गयी मोगरी, ककड़ी, मूली के पत्ते आदि पूरी तरह अचित्त न होने से सचित्त के त्यागी के लिए ग्रहण करने योग्य नहीं होते हैं।

जमीकन्द-त्याग

कन्दमूल या जमीकन्द का स्थूल अर्थ है- जमीन के अन्दर पैदा होने वाली अनन्तकायिक वनस्पति, जैसे- आलू, रतालू, प्याज, मूला, गाजर, अदरख आदि। वनस्पतिकायिक जीवों के तीन भेद किये गये हैं- सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक।

1. सूक्ष्म वनस्पति के जीव सम्पूर्ण लोक में ठसाठस भरे हुए हैं।
2. सूक्ष्म तथा साधारण वनस्पति वह है जिसमें एक औदारिक शरीर में अनन्त जीव हों।
3. प्रत्येक वनस्पति वह है जिसमें एक औदारिक शरीर में एक ही जीव हो।

अनन्त निगोदिया जीवों का औदारिक शरीर एक ही होता है, उन सबके तैजस और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न ही हैं।

जमीकन्द (अनन्तकाय) के कुछ भेद इस प्रकार मिलते हैं- 1. आलू, 2. रतालू, 3. पिण्डालू, 4. चुकन्दर, 5. शलजम, 6. गाजर, 7. मूला, 8. हरी हल्दी, 9. अदरख, 10. सूरणकन्द, 11. वज्रकन्द, 12. प्याज, 13. लहसून, 14. शकरकन्द आदि।

मोठ, चना, मूँग आदि को भिगोने से निकले हुए अंकुर, ये सब अनन्तकाय हैं। ये अन्तर्मुहूर्त तक अनन्तकाय रहते हैं बाद में प्रत्येक काय हो जाते हैं। अतः अंकुर निकलने के लगभग 24 मिनिट बाद इन्हें काम में लेने पर अनन्तकाय का दोष नहीं लगता है। किन्तु वनस्पति रूप होने से सचित्त तो रहते ही हैं, अतः सचित्त के त्यागी को इनका सेवन नहीं करना चाहिए। अग्नि आदि पर पकाने के बाद ये अचित्त हो जाते हैं।

जमीकन्द-त्याग क्यों?

(अ) जमीकन्द आदि का त्याग कर अनन्त जीवों की विराधना से सहज ही बचा जा सकता है।

(ब) प्राकृतिक विधान के अन्तर्गत भी जमीकन्द में प्राय ऐसी वनस्पतियाँ आती हैं जो सूर्य से सीधी ऊर्जा प्राप्त न करके पृथ्वी के अन्तर से अर्थात् तमस् से ऊर्जा पाती हैं, तमस् में रहती हैं इसलिये इनके खाने से तामसिकता आती है।

(स) जमीकन्द से स्वाद-लोलुपता बढ़ती है। इनके खाने के पश्चात् प्रायः आलस्य और प्रमाद बढ़ने की भी संभावना अधिक रहती है। अतः अपना हित चाहने वालों को तथा दुःखों से मुक्त होने वालों को जमीकन्द के सेवन से बचना चाहिए।

कक्षा : चतुर्थ – जैन धर्म मध्यमा (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- **10x1 = (10)**

(a) प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने का पाठ है-

(क) इच्छामि णं भंते (ख) इच्छामि ठामि

(ग) आगमे तिविहे (घ) दर्शन सम्यक्त्व (क)

(b) पन्द्रह कर्मादानों का उल्लेख किस व्रत में किया गया है -

(क) पहला (ख) आठवाँ

(ग) सातवाँ (घ) बारहवाँ (ग)

(c) चौथा आवश्यक है -

(क) सामायिक (ख) चउवीसत्थव

(ग)प्रतिक्रमण (घ) वंदना (ग)

(d) 'भामण्डल' गुण है -

(क) अरिहंत का (ख) सिद्ध का

(ग) आचार्य का (घ) उपाध्याय का (क)

(e) निम्न में से मूल सूत्र है -

(क) आचारांग (ख) चन्दपन्नती

(ग) नन्दी सूत्र (घ) वण्हिदसा (ग)

(f) जिस कर्म के प्रभाव से जीव विविध पर्यायों का अनुभव करे, वह है-

(क) ज्ञानावरणीय (ख) गोत्र

(ग) नामकर्म (घ) अन्तरायकर्म (ग)

(g) अंगोपांग है -

(क) 06 (ख) 03

(ग) 05 (घ) 08 (ख)

(h) असाता वेदनीय कर्म का बंध कितने प्रकार से होता है -

(क) 08 (ख) 12

(ग) 28 (घ) 10 (ख)

(i) देवायु बंध का कारण नहीं है-

(क) सराग संयम (ख) अज्ञान तप

(ग) दयावन्त (घ) अकाम निर्जरा (ग)

(j) वर्षा ऋतु में गर्म पानी कितने प्रहर तक अचित्त रह पाता है-

(क) तीन प्रहर (ख)चार प्रहर

(ग) पाँच प्रहर (घ) आठ प्रहर (क)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) ज्ञान के 14 अतिचार होते हैं। (हाँ)

(b) अपनी स्त्री का मर्म प्रकाशित किया हो, यह तीसरे स्थूल का अतिचार है। (नहीं)

(c) बारहवाँ पापस्थान कलह है। (हाँ)

(d) पौषध कम से कम पाँच प्रहर के लिये ग्रहण किया जाता है। (हाँ)

(e) निशीथ सूत्र छेद सूत्रों का एक भेद है। (हाँ)

(f) दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ हैं। (हाँ)

(g) भगवान शांतिनाथ के धर्मपरिवार में 62,000 साध्वियाँ थीं। (नहीं)

(h) भगवान श्री शांतिनाथजी 16वें तीर्थंकर थे। (हाँ)

(i) 'मेरे अन्तर भया प्रकाश' प्रार्थना के रचयिता आचार्य श्री हस्ती है। (हाँ)

(j) 'रतालू' जमीकंद का एक भेद है। (हाँ)

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मैं सम्यक्त्व ग्रहण करने का पाठ हूँ। दर्शन सम्यक्त्व/अरिहंतो महदेवो का पाठ

(b) मैं सातवें व्रत का 26वाँ बोल हूँ। दव्वविहि

(c) मेरा एक अतिचार कालाइक्कमे है। बारहवाँ व्रत

(d) मैं 36 गुण एवं 8 सम्पदा सहित हूँ। आचार्य

(e) मैं अंतिम आवश्यक हूँ। प्रत्याख्यान

(f) मेरी उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। मोहनीय कर्म

(g) मैं उपयोग का 10वाँ भेद हूँ। अचक्षुदर्शन

(h) मैने राजा मेघरथ के भव में तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन किया। भगवान शांतिनाथ

(i) मेरा अपर नाम गजेन्द्र भी है। आचार्य श्री हस्ती

(j) खुले मुहँ बोलने से तथा फूँक मारने से मेरी विराधना होती है। वायुकाय

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। 14x2 = (28)

(a) **समकित के कोई दो अतिचार लिखिए।**

उ **1 श्री जिन वचन में शंका की हो 2 परदर्शन की आकांक्षा की हो, 3 धर्म के फल में संदेह किया हो, 4 पर पाखण्डी की प्रशंसा की हो, 5 पर पाखण्डी का परिचय किया हो।**

(b) **99 अतिचारों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।**

उ **14 ज्ञान के, 5 समकित के, 60 बारह व्रतों के, 15 कर्मादान के, 5 संलेखना (तप) के।**

(c) **तस्स सव्वस्स का पाठ लिखिए।**

उ तस्स सव्वस्स देवसियस्स, अइयारस्स, दुब्भासिय-दुच्चिन्तिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि।

(d) **पाँचवें व्रत में श्रावक-श्राविकाएँ किन-किन पदार्थों की मर्यादा रखते हैं ?**

उ पाँचवें अणुव्रत में श्रावक-श्राविकाएँ, क्षेत्र-खुली जमीन, वस्तु-मकान, दुकान आदि, हिरण्य-सुवर्ण-सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात आदि, धन-धान्य-रूपये-पैसे, बोण्ड, शेयर, अनाज आदि, द्विपद-चतुष्पद-परिवार, नौकरादि, गाय-भैंस आदि पशु-पक्षी, कुविय-घरेलू उपकरण, फर्नीचर आदि पदार्थों की मर्यादा करके शेष परिग्रह का त्याग करता है।

(e) **चार मूल सूत्र के नाम लिखिए।**

उ 1 उत्तराध्ययन सूत्र 2 दशवैकालिक सूत्र

3 नंदी सूत्र 4 अनुयोगद्वार सूत्र

(f) **प्रतिक्रमण का मूल उद्देश्य क्या है ?**

उ ज्ञान दर्शन चारित्राचारित्र व तप पर लगे अतिचारों की शुद्धि करना।

(g) **गुणस्थान किसे कहते हैं ?**

उ मोह और योग के निमित्त से आत्म विकास की बनने वाली तरतम अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं।

(h) **नोकषाय मोहनीय के भेद लिखिए।**

उ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद।

(i) **सातवीं नारकी में उपयोग लिखिए।**

उ **3 ज्ञान, 3 अज्ञान, 3 दर्शन**

(j) **माता अचिरादेवी ने अपने पुत्र का नाम शांतिनाथ क्यों रखा ?**

उ माता अचिरादेवी के गर्भ में प्रभु का आगमन होते ही महामारी का भयंकर प्रकोप शांत हो गया, अतः नामकरण संस्कार के समय आपका नाम शांतिनाथ रखा गया।

(k) **भगवान शांतिनाथ को केवल ज्ञान की प्राप्ति कब एवं किस नक्षत्र में हुई ?**

उ पोष शुक्ला नवमी को भरणी नक्षत्र में केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हुई।

(l) **रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-**

उ चारों ओर अंधेरा है, एक सहारा तेरा है,

जीवन सूना-सूना है, पिछड़ा दूना-दूना है।

(m) **नवकारसी लेने का पाठ लिखिए।**

उ उग्गए सूरे नमोक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विह पि आहारं

असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं वोसिरामि।

(n) **पृथ्वीकाय की विराधना कैसे होती है ?**

उ नींव आदि खुदवाना, पत्थर आदि को तोड़ना इन कार्यों में स्पष्टतः पृथ्वीकाय की विराधना होती है।

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3=(42)**

(a) **आठवें व्रत के प्रमुख आगारों के नाम लिखिए।**

उ आठ आगार- आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहि, आगारेहिं अण्णत्थ।

(b) **पौषध व्रत के पाँच अतिचार लिखिए।**

उ 1 अप्पडिलेहिय- दुप्पडिलेहिय सेज्जासंथारए,

2 अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सेज्जासंथारए,

3 अप्पडिलेहिय, दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवण भूमि,

4 अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चार पासवण भूमि,

5 पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया।

(c) **अरिहंत भगवान के 12 गुण लिखिए।**

उ

1 अनन्त ज्ञान,	2 अनन्त दर्शन,	3 अनन्त चारित्र,	4 अनन्त बल वीर्य,
5 दिव्य ध्वनि,	6 भामण्डल,	7 स्फटिक सिंहासन,	8 अशोक वृक्ष,
9 कुसुम वृष्टि,	10 देवदुन्दुभि,	11 छत्र धरावे,	12 चँवर बिजावें।

(d) **साधुजी महाराज के 27 गुण लिखिए।**

उ पाँच महाव्रत वाले, पाँच इन्द्रिय जिते, चार कषाय टाले, भाव सच्चे, करण सच्चे, जोग सच्चे, क्षमावंत, वैराग्यवंत, मन समाधारणया, वय समाधारणया, काय समाधारणया, नाण सम्पन्ना, दंसण सम्पन्ना, चारित्त सम्पन्ना, वेदनीय समाअहियासन्निया, मारणंतिय समाअहियासन्निया। ऐसे 27 गुण करके सहित है।

(e) **समुच्चय पच्चक्खाण का पाठ लिखिए।**

उ गंठिसहियं, मुट्ठिसहियं, नमुक्कारसहियं, पोरिसियं, साड्ढपोरिसियं,

चउविहं पि आहारं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, अपनी-अपनी

धारणा प्रमाणे पच्चक्खाण, अण्णत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं,

महत्तरागारेणं, सव्व समाहिवत्तियागारेणं, वोसिरामि।

(f) **''जं, ...भणता, गुणता'' उक्त पाठ को पूर्ण करके लिखिए।**

उ जं-वाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरं, अच्चक्खरं, पयहीणं, विणयहीणं, जोगहीणं, घोसहीणं, सुट्ठुदिण्णं, दुटठुपडिच्छियं, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ, असज्झाइए सज्झायं, सज्झाए न सज्झायं, भणता, गुणता।

(g) **छेदोपस्थापनीय तथा यथाख्यात चारित्र को परिभाषित कीजिए।**

उ <u>छेदोपस्थापनीय चारित्र -</u> यह चारित्र प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासनकाल में होता है। महाव्रतों में कोई दोष लगने पर अथवा बड़ी दीक्षा दिलाने पर पुनः महाव्रतों में आरोपित करना ' छेदोपस्थापनीय चारित्र' है।

<u>यथाख्यात चारित्र-</u> राग, द्वेष, कषाय, मोह आदि के उदय से पूर्णतः मुक्त होकर तीर्थंकर भगवंतों द्वारा जो शुद्ध चारित्र का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है, उसे उसी रूप में आराधन करना, पालन करना 'यथाख्यात चारित्र' है।

(h) **मोहनीय कर्म बंध के 6 कारण लिखिए।**

उ 1 तीव्र क्रोध करने से। 2 तीव्र मान करने से।

3 तीव्र माया करने से। 4 तीव्र लोभ करने से।

5 तीव्र दर्शन मोहनीय से 6 तीव्र चारित्र मोहनीय से।

(i) **संज्ञा किसे कहते हैं ? संज्ञा के भेदों के नाम लिखिए।**

उ ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के क्षयोपशम से एवं वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा में होने वाली आहारादि की इच्छा (अभिलाषा) को 'सज्ञा' कहते है।

भेद- 1. आहार संज्ञा 2 भय संज्ञा 3 मैथुन संज्ञा

4 परिग्रह संज्ञा 5 क्रोध संज्ञा 6 मान संज्ञा

7 माया संज्ञा 8 लोभ संज्ञा 9 लोकसंज्ञा 10 ओघ संज्ञा।

(j) श्रावक का दूसरा मनोरथ लिखिए।

उ वह दिवस धन्य होगा जब मैं संसार की मोह-माया और विषय वासना का त्याग करके साधु जीवन स्वीकार करूँगा। अहिंसादि पाँच महाव्रतों को धारण कर, परीषह-उपसर्गों को समभाव से सहन कर जिस दिन द्रव्य व भाव से मुनि पद की ऊँची भूमिका में विचरण करूँगा, वह दिवस मेरे लिये परम मंगलकारी होगा।

(k) भगवान शांतिनाथजी के जीवन से मिलने वाली कोई तीन शिक्षाएँ लिखिए।

उ 1 अहिंसा एवं परोपकार के कार्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

2 उदारता गुण को बढ़ाने हेतु एक-दूसरे का सहयोगी बनना चाहिए।

3 परीक्षा एवं प्रतिकूलता की घड़ियों में भी अपनी प्रतिज्ञा को दृढ़ता से पूर्ण करना चाहिए।

4 करूणाभाव को बढ़ाने हेतु यथाशक्ति क्रियात्मक सेवा को अपनाना चाहिए।

(l) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

उ तन धन परिजन सब ही पर हैं, पर की आश निराश,

पुद्गल को अपना कर मैंने, किया स्वत्व का नाश।

(m) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

उ बोधि बीज जो पाया है, तरू बनकर मुस्काया है,

सत्यज्ञान का हो सिंचन, झंझाओं से हो रक्षण।

फल आने की ऋतु आये, भव्य साधना बन जाये,

पत्रित पुष्पित और फलित वो, करूणा रस बरसाओ।।

(n) तेउकाय की सचित्तता के प्रमाण लिखिए।

उ तेउकाय- जलती हुई अग्नि, गैस के चूल्हे आदि तो प्रत्यक्ष सिद्ध है ही, बिजली की सचित्तता के सम्बंध में अनेक प्रमाण हैं। सेल की धारा में भी वही विद्युत् कम मात्रा में लगभग 1.5 वोल्ट के रूप में रहती है, इसलिये चालू सेल, सेल्यूलर फोन, बैटरी, सेल की घड़ी आदि सचित्त मानी जाती है।